चूडामणि ग्रन्थमाला-१

मुकुन्दमाला

एवं अन्य

स्तोत्र-रत्न

सम्पादक एवं टीकाकार
जानकीनाथ कौल 'कमल'

श्रीरामकृष्ण आश्रम
शिवालय
श्रीनगर-कश्मीर

प्रकाशक
मन्त्री
श्रीरामकृष्ण आश्रम
शिवालय, पो॰ करण नगर,
श्रीनगर-190010 (काश्मीर)

प्रथम संस्करण 1963
द्वितीय संस्करण 1977
तृतीय संस्करण 1994

प्राप्तिस्थान :-

१. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
2-महेन्द्र नगर, कनाल रोड, जम्मू-180002

२. उत्पल पब्लिकेशन
आर-22, खनेजा कम्प्लेक्स,
सेकण्ड फ्लोर, शकरपुर, दिल्ली-110092

मूल्य रु॰ 25/-

"MUKUNDAMALA EVAM ANYA STOTRA RATNA"
Edited and annotated by Pandit Jankinath Kaul 'Kamal'

विषय सूची

प्रकाशकीय

हमें हर्ष है कि 'मुकुन्दमाला' जैसे अनुपम भक्तिशास्त्र के अब तक कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं। इससे प्रमाणित होता है कि भक्तजनों ने इस सुन्दर भक्ति-प्रेरक ग्रन्थ को खूब अपनाया है। इसकी मांग और भी बडती रही। अस्तु, अब श्रीरामकृष्ण आश्रम श्रीनगर इसका संवर्द्धित संस्करण भक्तजनों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

पुस्तक की प्रस्तावना मनन करने योग्य है। भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर तथा पराम्बा भगवती त्रिपुरसुन्दरी के स्तोत्रों के अतिरिक्त इस संस्करण में वेद द्वारा निर्दिष्ट 'ब्राह्मीविद्या' (विश्लेषणात्मक अनुवाद सहित) तथा 'उपनिषद्-पाठ' जोड दिए गए हैं। आशा है भक्तजनों के नित्य पाठ में ज्ञानवर्धक होने से यह प्रयत्न लाभकारी सिद्ध होगा।

हम पण्डित जानकीनाथ कौल 'कमल' के सफल प्रयास को सराहते हैं जिन्होंने कठिन परिस्थितियों में भी हमारे 'संस्कृति-स्तम्भ' को सहर्ष चलाकर कश्मीर की सांस्कृतिक धरोहर को अपनी विश्लेषणात्मक टीकाओं द्वारा सुरक्षित रखा। उनका 'भवानीनाम-सहस्रस्तुतिः' का आङ्गलानुवाद पहले प्रकाशित किया गया है जिसका विद्वज्जन समाज ने आह्लादपूर्ण आदर किया। उनकी 'पञ्चस्तवी' तथा 'इन्द्राक्षी स्तोत्र' की टीकाएं भी अंग्रेज़ी भाषा में छप रही हैं। इसी कडी की प्रथम पुस्तक 'मुकुन्दमाला एवं अन्य स्तोत्ररत्न' का यह तीसरा संस्करण है।

श्रीनगर,
जून 17, 1994

ब्रजनाथ कौल

तीसरा संस्करण

मुकुन्दमाला का पहला-दूसरा संस्करण समाप्त होने के साथ ही इस भक्ति-भाव पूर्ण पुस्तिका की मांग बराबर जारी रही। अतः कई वर्षों से इसके पुनः छपवाने का विचार चलता रहा। माँग को पूरा करने में आर्थिक कठिनाइयों और बड़ते हुए दामों के कारण विलम्ब अवश्य हुआ। इसके लिए भक्तजनों से क्षमा-प्रार्थी हूं। अब इस ग्रन्थ-रत्न को पुनरवलोकित रूप में जनता के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। परिशिष्ट (क) में भक्तजन हितार्थ कुछ और स्तुतियां दी गई हैं जिनके लिए कई मित्रों ने आग्रह किया था। परिशिष्ट (ख) में अलौकिक शिवस्तुति, ब्रह्मी विद्या और उपनिषद पाठ जोड दिये हैं।

संग्रहस्तोत्र भक्ति-ज्ञान सम्पन्न सर्वप्रिय स्तोत्र है। इसके श्लोकों का अनुवाद कश्मीरी भाषा में श्री दामोदर नेहरू नें सुमधुर वाणी में किया है, जिसका संशोधन मैं ने किया और शैवाचार्य महामहिम श्री स्वामी लक्ष्मण जू से अनुमोदन प्राप्त कर इस संस्करण में दिया है। भगवान शंकर, भगवान विष्णु और भगवती के रूपों की दूसरी स्तुतियां जो विशेषकर कश्मीरी जनता में सदा से प्रचलित रही हैं सरल हिन्दी टीका सहित भी दी गई हैं ताकि देश की नैय्या को आगे ले जाने वाला और भारतीय संस्कृति का रक्षक युवक-समाज (युवा-पीडी) अधिक लाभ उठा सके। मुकुन्दमाला के श्लोकों के अर्थ तथा सारांश पूर्व संस्करण के अनुसार इन्दुमति (कौल) गंजू लिखित ही हैं।

राजा कुलशेखर का जीवन परिचय

मुकुन्दमाला का यह अनुपम ग्रन्थ दसवीं शताब्दी के आस-पास आचार्य रामानुज से प्रेरित वैष्णव-धर्म के अनुयायी परम भक्त तथा दार्शनिक रार्जाष कुलशेखर द्वारा निर्मित हुआ है। कुलशेखर अलवार का जन्म १०७६ ई० में हुआ बताया जाता है। यद्यपि इनके जीवन के बारे में बहुत कम पता चलता है तथापि परम्परागत जनश्रुति और अन्य प्रतियों द्वारा जो कुछ सुनने और पढ़ने को मिला है उसका उल्लेख करना यहां असमीचीन न होगा।

इस भव्य पुरुष का बालपन प्रखर बुद्धि युक्त और ऊज्ज्वल रहा होगा। इनके पिता जो केरल देश के राजाओं में से एक हुए हैं, इनके बुद्धि कौशल और उन्नति से इतने प्रभावित हुए थे कि अपने जीवन काल में ही उन्होंने युवा कुलशेखर का राज्याभिषेक किया। जहां कुलशेखर एक प्रसिद्ध योद्धा थे वहां इनकी रुचि दर्शन की ओर ही सदा रही। परिणाम यह हुआ कि यह तत्कालीन वैष्णव-धर्म के प्रभाव से प्रभावित हुए। इस कारण लौकिक जीवन से उपरत होकर वैष्णव-धर्म सर्व-सहायक तथा सर्व-सहमत मत बन गया था जिसके फलस्वरूप हरिजनों सहित सब जातियों के लोग इसमें सम्मिलित हुए।

मुकुन्दमाला के अन्तिम श्लोक (कवि परिचय) से पता चलता है कि राजा कुलशेखर के दो प्रिय मित्र थे जिनसे उनको इन श्लोकों के काव्य सौन्दर्य और दर्शन-ज्ञान में प्रेरणा मिली होगी, उनके नामों के बारे में कश्मीर की प्रतियों

में उल्लेख नहीं है। इस श्लोक की पहली दो पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

यस्य प्रियौ श्रुतिधरौ रविलोकगीतौ
मित्रे द्विजन्म परिवार शिवावभूताम्।

"जिस (राजा) के प्रिय और श्रुति - पुराण के ज्ञाता दो मित्र, जिनका यश सूर्यलोक तक व्याप्त था, ब्राह्मण परिवार में कल्याण रूप ही पैदा हुए थे।"

परन्तु कशमीर के ब्रह्मलीन श्री स्वामी माधवानन्द सरस्वती द्वारा अनुवादित (पैंतालीस वर्ष पूर्व लाहौर में छपी) प्रति में दूसरी पंक्ति का अर्थ इस प्रकार मिलता है:—

"द्विजन्म परिवार और शिव नाम वाले मन्त्रिवर थे।"

"डॉ० राजारमण्ण द्वारा अंग्रेज़ी में अनुवादित प्रति* में इन दो पंक्तियों का पाठान्तर इस प्रकार मिलता है:—

यस्य प्रियौ श्रुतिधरौ कविलोकवीरौ
मित्रे द्विजन्मवर पद्मशरावभुताम्।

यहां "कविलोकवीरौ" का अर्थ होगा—जो कविलोक अर्थात् काव्य सौष्ठव में वीर अर्थात् चतुर (तीक्ष्ण बुद्धि) थे।

---

* **Mukundamala of Kulshekhar Alwar** with the Sanskrit Text and English translation by Dr. Raja Ramanna Chairman, Babha Atomic Research Centre Bombay—c. f. Bhavan's Journal Oct. - Nov. 1974.

इन दो मित्रों के नाम यहाँ 'द्विजन्मवर' और 'पद्मशर' मिलते हैं जिनके नाम अंग्रेज़ी अनुवाद में संक्षेप से "वर" और "पद्म" दिए हैं।

जो कुछ भी हो, परन्तु कहा जाता है कि राजा के दो मन्त्री श्रुतियों के ज्ञाता, कवि तथा दार्शनिक थे। क्योंकि राजा को इनसे प्रेरणा और सत्संग मिलता रहा होगा, अतः इन्हें वह मित्र भी माने बैठे थे। कहते हैं कि इन्हीं दो मन्त्रिवरों से राजा कुलशेखर को प्रेरणा और ख्याति मिली थी।

मेरे मित्रवर्य श्री श्यामलाल कौल (पुरुषयार) से ज्ञात हुआ है कि १९३०-३१ में मुकुन्दमाला का अध्ययन करते समय उनको अपने गुरु महाराज श्री स्वामी नन्दलाल जी (बडगाम काश्मीर) ने भूमिका के रूप में कहा था कि राजा कुलशेखर के दो श्रोत्रिय मन्त्री थे जिनमें से एक मन्त्री राजा को दरबार में एक दिन कोई फाईल (मिसल) सुनाते समय इतना दत्त-चित्त रहा कि नीचे से सांप ने पैर को ड़स लिया और उसे इस बात की संज्ञा तक न रही। बाद में यह जानकर मन्त्री ने विचारा कि मैं संसार में इतना व्यस्त हूं और यदि परमेश्वर में इतना मग्न होता तो भेड़ा पार होता। यह विचार कर मन्त्री महोदय संसार कार्य से उपरत हुए थे। इस घटना से मन्त्री जी की आत्मोन्नति का पता चलता है।

आगे कहा कि राजा ने अपनी राजधानी में एक भव्य विष्णु-मन्दिर बनवाया था। इस मन्दिर में जाने के लिए बत्तीस पोड़ियों की एक सीड़ी बनवाई गई थी। कुलशेखर

नें भक्ति-भाव प्रदर्शन में एक-एक पोड़ी का एक-एक श्लोक बनाया। इस से यह मान्यता हुई है कि मुकुन्दमाला के केवल बत्तीस श्लोक हैं और अन्तिम दो श्लोक कवि ने आत्म-परिचय के रूप में दिए जान पडते हैं जो कश्मीर की प्रतियों में मिलते है।

मुकुन्दमाला में पाठ-भेद

भारतवर्ष में मुकुन्दमाला के कई पाठ उपलब्ध हैं। इस बात से डा० राजा रमणण महोदय भी सहमत हैं। पाठ में भिन्नता कहां से और कैसे आई इसके बारे में कुछ कहना अभी कठिन है।

हमारे प्रथम संस्करण का पाठ यहां के कर्मठ स्वर्गीय पं० केशव भट्ट की प्रति के अनुसार दिया गया था, इसमें ४१ श्लोक हैं। इनमें छः (पूर्व संस्करण के १५, १३, १७, १८ और २२) क्षेपक माने जाते हैं। यह छहों श्लोक स्वामी माधवानन्द सरस्वती की प्रति में नहीं मिलते हैं और न कश्मीर में प्रचलित विष्णु-पूजा में ही सम्मिलित हैं। अतः पंडितवर्य श्री श्यामलाल जत्तू से परामर्श कर यह श्लोक वर्तमान संस्करण में, मुकुन्दमाला के पूर्व-श्लोक क्रम से अलग कर, परिशिष्ठ भाग में दिए गए हैं।

बम्बई की प्रति में मुकुन्दमाला का प्रथम श्लोक (वन्दे मुकुन्दम्०) नहीं मिलता है। इसका प्रथम श्लोक है—

घुष्यते यस्य नगरे रंगयात्रा दिने दिने।
तमहम् शिरसा वन्दे राजानम् कुलशेखरम्॥

क्योंकि इस श्लोक में राजा कुलशेखर को ही नमस्कार किया गया है, यह मुकुन्दमाला के लेखक का नहीं हो सकता। किसी टीकाकार का, जिसने इस ग्रन्थ पर टीका लिखी होगी, होना चाहिए। इसी प्रकार इस प्रति में और ऐसे १२ श्लोकों में से चार श्लोक पाण्ड़व-गीता में भी मिलते हैं जो महाभारत से उद्धृत हैं। एक श्लोक (भवजलधिगताना‌म्०) डा० रमणण की प्रति में १३वां० और हमारे पूर्व संस्करण में १५वां० है। परन्तु क्षेपक होने के कारण यह हमने परिशिष्ट भाग में ही रखा है। केवल २४ श्लोक कश्मीर और बम्बई के दोनों संस्करणों में मिलते हैं जिनमें कहीं-कहीं पाठ भेद भी है।

दो श्लोक और विवादास्पद हैं। हमारे संस्करण का दूसरा श्लोक (श्री वल्लभेति) स्वामी माधवानन्द की प्रति में नहीं मिलता है परन्तु डा० रमणण की प्रति में यह यथा-स्थान दूसरा श्लोक है। तीसरा श्लोक (जयतु जयतु देवो०) उपलब्ध सारी प्रतियों में है परन्तु यह पाण्डव-गीता का ५०वां श्लोक है। अतः यह श्लोक राजा कुलशेखर का होने में सन्देह है। परन्तु यह दोनों श्लोक हमने पं० श्यामलाल जत्तू से विचार कर यथा स्थान ही रखे हैं क्योंकि इनका पाठ कश्मीर की विशणु-पूजा में प्रचलित है। इस प्रकार मुकुन्दमाला के इस संस्करण में ३५ श्लोक हैं। शेष ६ श्लोक क्षेपक माने जाते हैं। डा० रमणण महोदय की प्रति में कश्मीर की प्रतियों के केवल २८ श्लोक मिलते हैं। इनमें क्षेपक श्लोकों में से 'भवजलधिगतानां०' एक है। शेष १२ श्लोकों में से श्लोक

८, २८ और ३६ पाण्ड़व-गीता के ५२, २४ और ६० के श्लोकों से क्रमशः मिलते हैं। अन्य नौ श्लोकों के बारे में अभी कुछ कहना कठिन है।

भारत में उपलब्ध मुकुन्दमाला के भिन्न-भिन्न पाठों में से यह निर्धारण करना कि वास्तव में राजा कुलशेखर लिखित कौन से श्लोक हैं और क्या ये ३२ ही हैं, हम युवा-पीढ़ी के हाथ सौंप देते हैं।

आभार

अन्त में मैं उन उपरिलिखित महानुभावों का आभार प्रकट करता हूँ जिनके सहयोग तथा परामर्श से मुकुन्दमाला के बारे में कुछ ज्ञातव्य बातों का पता चला और तुलनात्मक परिचय विज्ञ पाठकों को दिया जा सका है।

भगवान श्री लक्ष्मण जू के चरणकमलों में बार-बार प्रणाम है, जिनकी अहैतुकी करुणा, प्रेरणा तथा आर्शीवाद से इस उत्तम भक्ति-शास्त्र का उत्तरोत्तर प्रचार हो रहा है।

अस्तु मुकुन्दमाला में जहां भक्ति-वैराग्य द्वारा मोक्ष मार्ग का निर्देश है वहां इसमें काव्य-सौन्दर्य तथा दार्शनिकता की उत्तम पुट है, जो साथ में दिए श्रीमद् जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य तथा श्रीमद् अभिनवगुप्ताचार्य के लोकप्रिय कुछ टीका-सहित स्तोत्रों से निखर उठती है। इति

—जानकीनाथ कौल 'कमल'

जनवरी १७, १९९४

ॐ

प्रस्तावना

वन्दे श्रीचरणारविन्दयुगलं संसारजाढ्यापहम् ।
वन्दे श्रीजगदिुशीतलकरं स्वस्थं शुभं सन्निधिम् ॥
वन्दे भूसुरमर्पितार्तिप्रहरं संसारध्वांतापहम् ।
वन्दे शीलगुणान्वितं गुरुवरं श्रीनीलकण्ठं शिवम् ॥

इस जगत में द्वैत के संघर्ष में पडा जीव जन्मजन्मान्तर के सुख दुःख को भोगता रहता है। यदि वह अपना स्वरूप जानने में उसी प्रकार लगता जिस प्रकार वह संसार के विषयों के अभिमुख रहता है तो अक्षय आनन्द को पाकर कृतकृत्य हो जाता। फिर यह भटकना नहीं पडता। वास्तव में वह आनन्द तो कहीं बाहर नहीं। जिस प्रकार बन में हिरण कस्तूरी की सुगन्धि का अधिकाधिक आस्वाद लेने के लिये सारा वन छान डालता है उसी प्रकार यह जीव अपने ही आनन्द का आभास विषयों में पाकर ठोकर खाता फिरता है। यदि हिरण को पता लग जाय कि कस्तूरी उसके अपने पास ही है तो वह नाहक भटक कर अतिश्रम के दुःख को न पाता। ठीक इसी प्रकार यदि जीव पुरुषप्रयत्नसाध्य अपने पुण्य पुंज द्वारा कमाई भगवत्कृपा से अपने स्वरूप को जानने

की इच्छा करता तो अवश्य ही गर्भवासादि दु:ख से छूटकर नित्यानन्द की ओर बड जाता।

इस आनन्द-वृक्ष का मूल सत्सङ्ग है। सत्सङ्ग के बिना यह विवेक नहीं हो सकता है। अत: साधुमहिमा अपार और अनिर्वचनीय है।

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च। (नारद भक्ति सूत्र ३९)

अर्थात् महान पुरुष का संग दुर्लभ है अगम्य और अमोघ हैं और वह भी :—

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव। (नारद भक्ति सूत्र ४०)

अर्थात् सन्तों का समागम परमेश्वर की कृपा से ही प्राप्त होता है। गुसांई तुलसीदास जी कहते हैं :—

"बिनु सत्सङ्ग विवेक न होई,
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।"

सत्संग का इतना महत्व है कि सन्त कबीर निरा अनपढ होकर भी (मसि काकद छुए नहीं कलम गही नहिं हाथ) सत्संग के प्रभाव से आत्माराम के सुख का भागी बना और अनेक भक्त जन उसकी वाणी का प्रसाद पाकर धन्य हुए। अत: आवश्यकता है श्रद्धा और भक्ति की जिस से जीव सत्संग की ओर लग जाय। सत्संग से विवेक और वैराग्य उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् जीव साधना में झुट जाये तो ईश्वरीय ज्ञान का उदय होना सम्भव होता है जिस से वह संकल्पजाल को समेटकर और अपने अद्वैत स्वरूप को पहचान कर अक्षय आनन्द का अनुभव करने लगेगा।

"यत्किंचिदपि संकल्पान्नरो दुःखे निमज्जति ।
न किंचिदपि संकल्पात्सुखमक्षयमश्नुते ।।" —योगवासिष्ठ

अथवा जीव का पशुभाव शिवभाव में विलय हो जायेगा—

"पाशबद्धः सदा जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः" (कुलार्णव तन्त्र)

संसार-पाश में बन्धा जीव अनेक प्रकार की यातनाओं में पीडित होता रहता है। आत्मोन्नति के साधन में न लग कर विपर्यय ज्ञान के आश्रित अवनति की ओर ही बडता है। ईशावास्योपनिषद् में कहा है:—

"असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता-
स्तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।" ३

अर्थात् आत्मा का हनन करने वाले लोग उन लोकों को जाते हैं जो असूर्या नाम वाले हैं, अप्रकाश रूप हैं और घोर अन्धकार रूप तम से ढके हुए हैं।

अतः जीव को इस संसार के संकल्प-पाश से मुक्त होकर ही शिवभाव अर्थात् स्वस्वरूप में स्थिति (स्वस्थता) का अनुभव होता है। वास्तव में इसी अभेदभाव की सिद्धि अथवा स्वरूपस्थिति के लाभ को ही नमस्कार कहते हैं। इस अवस्था में आत्मा (जीवभाव अथवा पशुभाव) का आनन्दघन परमात्मा (शिवभाव) में स्वाहा हो जाता है। यही महायज्ञ है जिसके तीन अंग हैं:— कर्म, उपासना और ज्ञान। कर्म इस यज्ञ के साधनरूप हैं, उपासना साधनों का अनुष्ठान और ज्ञान

अक्षयानन्द फल। यही अ उ म रूप प्रणव की तीन शक्तियां ॐ अक्षर में निहित है। यही एक अक्षर विष्णु, महेश्वर और ब्रह्मा का वाचक है। जैसे शास्त्र में कहा है:—

अकारो विष्णुरुदिष्ट उकारस्तु महेश्वर:।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मता:॥

प्रणव को शास्त्रों में दिव्य मन्त्र कहा है क्योंकि सृष्टि के आद्य में त्रिगुणात्मिका प्रकृति के स्पन्दन से जो ध्वनि प्रकट होती है, वह ॐकार रूपा है। प्रणव मन्त्र का निर्वचन शिवपुरारण के विश्वेश्वरी संहिता में एक स्थान पर इस प्रकार किया है:—

प्र: प्रपञ्चो न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदु:॥

मण्डलेश्वर स्वामी श्री जयेन्द्रपुरी जी ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है:—" 'प्र' अर्थात् प्रपञ्च, 'न' अर्थात् नहीं हैं, 'व:' अर्थात् आपमें। अर्थात् जिसके अर्थानुसंधान पूर्वक जप करने से मुमुक्षु को अपने सर्व प्रपञ्चोपशम शिव शान्त स्वरूप का बोध होता है, और जिस मन्त्र के द्वारा अपने शुद्ध स्वरूप में 'प्रपञ्चो नासीदस्तिभविष्यति' (प्रपञ्च वस्तुगत्या न था, न है एवं न होगा) इस प्रकार प्रपञ्च का त्रैकालिक अत्यन्ताभाव निश्चय होता है, उस ॐ मन्त्र को प्रणव कहते हैं।"

यज्ञोपवीत भी ॐकार की तीन मात्राओं का ध्योतक है। इसी कारण यह तेहरा होता है। पं० सातवलेकर का विचार है कि "अ उ म इन तीन अक्षरों से क्रमश: जाग्रत-स्वप्न-

सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाएं बोधित होती हैं। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन अवस्थाओं में व्याप्त है मानो मनुष्य का जीवन रूपी जो महायज्ञोपवीत है उसके तीन धागे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये ही हैं। इनको यज्ञरूप बनाने का कार्य प्रत्येक यज्ञोपवीत धारण करने वाले को करना चाहिए।'' यज्ञोपवीत अर्थात् ब्रह्मव्रत का अभिप्राय यही है। यही ब्रह्मचर्य (ब्रह्म-आचरण करने का) व्रत है। ''यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति'' (गीता)।

यज्ञ में बलिदान की आवश्यकता अवश्य होती है। तबी तो यज्ञ सफल होता है। इस बलिदान में काम-क्रोध लोभादि इन्द्रियों के विकार ही बलि-पशु हैं। यह रहस्य महानिर्वाण तन्त्र में स्पष्ट लिखा है :—

कामक्रोधौ द्वौ पशू इमावेव बलिमर्पयेत्।
कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्वा जपं चरेत्॥

''काम और क्रोध दो पशु हैं, इन्हीं की बलि देनी चाहिए। विघ्नकारी इन काम-क्रोध की बलि देकर (अर्थानुसंधान पूर्वक) जप करें।''

इस बलिदान करने में पुरोहित की विद्यमानता आवश्यक है। पुरो अर्थात् सब से पहले अपने यजमान का हित चाहे, उसको पुरोहित कहते हैं। उसका वर्णन शास्त्रों में इस प्रकार है :—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

अतः प्रणव की महिमा को जानना चाहिए। शास्त्रों में प्रसिद्ध है— 'तस्य वाचकः प्रणवः' :- प्रणव (ओंकार) उस ईश्वर का वाचक है।

'मन्त्राणां प्रणवः सेतु'—: प्रणव मन्त्रों का सेतु (पुल) है।

'एक एव तु विज्ञेयः प्रणवो योगसाधनम्'—

योग का प्रकृष्ट साधन एक प्रणव ही है।

'ओमित्येतत्सर्वम्'— जो कुछ है सब ॐ है।

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय— कल्याण के लिए इससे अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

इसलिए सिद्ध यही बात है कि—

'निरन्तरं ब्रह्मणि ये रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः।'

अर्थः— लंगोटी लगाकर अर्थात् अखण्ड ब्रह्मचर्य से जिनकी भोग-लालसा सर्वथा निवृत्त हुई है, जिनकी इन्द्रियां एवं मन स्वाधीन हैं, जो हरदम ब्रह्मानन्द का अनुसंधान करते हुए निर्भय प्रसन्न, शान्त एवं आनन्दमय रहते हैं, वे ही भाग्यशाली हैं।

इसी उद्देश्य को पाने के लिए वेद तन्त्र, और शास्त्रों में यज्ञ, दान, तप और अनेक साधनायें विहित हैं। इनका

यथायोग्य आचरण करने से मनुष्य इस देव-दुर्लभ जन्म को सफल बनाने की राह पर अपने माया-मोह से कलुषित अन्त:करण को शुद्ध करने का प्रयत्न कर सकता है। फिर वेदान्त शास्त्राभिमत अथवा कश्मीर शैवमत (त्रिकमत) के अनुसार मुमुक्षु अद्वैतानन्द का उपभोग करते हुए अभिमत साधना के उत्कट अभ्यास से, जिसकी उपलब्धि ईश्वरीय अनुग्रह अथवा शक्तिपात से ही होती है, कृतकृत्य बन सकता है। तबी कर्म, उपासना और यज्ञ सफल होते हैं। जैसे कहा है :-

स्नातं तेन समस्ततीर्थ सलिले, दत्ता च सर्वावनि-
र्यज्ञानां च कृतं सहस्त्रमखिलाः देवाश्च संतर्पिताः।
संसाराच्चसमुद्धृताः स्वपितरास्त्रैलोक्य पूज्योऽप्यसौ
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मन: प्राप्नुयात्।।

अर्थ :— उसी (भाग्यशाली) ने सारे तीर्थों के जल में स्नान किया, सारी पृथ्वी दान में दी, सहस्त्रों यज्ञ किये, सब देवताओं को सन्तुष्ट किया, अपने पितरों का इस संसार-सागर से उद्धार किया और वही तीनों लोकों में पूजा के योग्य है, जिस (मुमुक्षु) का मन एक क्षण के लिए भी सत्परामर्श द्वारा परंब्रह्म अर्थात् शाश्वत शिव में स्थिरता को प्राप्त हुआ।

अर्थात् इन सब साधनों का परम साध्य परंब्रह्म परमेश्वर का यथार्थ ज्ञान ही है।

इसी भावना को बोधित करने के लिए इस छोटी सी पुस्तिका, मुकुन्दमाला के श्लोकों का अर्थ, अपने कुछ मित्रों के आग्रह तथा सज्जन - प्रेरणा से मुद्रण में लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस महत्वपूर्ण स्तोत्र के श्लोकों का अर्थ, अपनी यत्किंचित् बुद्धि से समझने का सौभाग्य मेरी सुपुत्री इन्दुमति कौल को भगवान श्री लक्ष्मण जू (स्वामी ईश्वर-स्वरूप जी महाराज, ईशबर, गुप्तगंगा, कश्मीर) से किसी पूर्व कृत्य के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। इन श्लोकों का अवगहन करने के लिए ही इन्दुमती ने इनके अर्थ को क्रम - पूर्वक लिखने का प्रयास किया। इस कार्य में उसे मेरी सहायता सुलभ थी। तभी तो उसके साहस में दृढता आगई। फिर उसने इस अर्थ को भगवान के श्रीचरणों में अर्पित करके अपने साहस की परीक्षा लेना चाही। श्री स्वामी जी महाराज ने अनुग्रह पूर्वक संशोधन किया और मुद्रण की अनुमति प्रकट की। अत: आपकी ही वस्तु आपके ही समर्पण है।

प्रत्येक श्लोक के अर्थ के अन्त में उसका भाव सरलता पूर्वक समझाने के लिए सारांश दिया गया है। मुकुन्दमाला में भक्ति और वैराग्य से पूर्ण उद्गार मिलते हैं जिनमें अन्तर्ज्योति परमात्मा में श्रद्धा की दृढता होती है। शरणागति भाव का उदय होता है जिसके द्वारा जीव परमानन्द के अद्वयामृत का पान कर धन्य होता है और जन्म-मरण की फांसी से छूट जाता है। भवरोग की औषधि मिलती है। यह नुस्खा इसी स्तोत्र के २५वें श्लोक में सप्रमाण इस प्रकार दिया है:—

हे लोकाः श्रृणुत प्रसूतिमरणव्याधेश्चिकित्सामिमां
योगज्ञाः समुदाहरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादयः।
अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां
तत्पीतं परमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम् ॥

अर्थ :-

सुनो चिकित्सा इस व्याधि की, जन्म-मरण कुछ जहां न हो।
याज्ञवल्क्य ऋषि, मुनि और योगी, साक्षी करते सत्ता को।
तोल बिना जो अमृत - आकर, बिनमापे अन्तर्ज्योति को।
कृष्ण नाम की औषधि पीकर, पा लो अक्षय मुक्ति को॥

लल्लेश्वरी दिवस
२० अक्टोवर, १९६३
७७ द्राबीयार,
श्रीनगर (काश्मीर)

जानकीनाथ कौल
'कमल'

मुकुन्दमाला स्तोत्र की भूमिका

गत-वर्ष अपने प्रिय शिष्यों द्वारा प्रेरित होकर मैंने 'मुकुन्द-माला, नामक स्तोत्र-ग्रन्थ उन को पढाया। सौभाग्यवश मेरे प्रिय सुहृद् श्री जानकीनाथ जी कौल की सुपुत्री इन्दुमती जी भी व्याख्यान सुनने के लिए आया करती थी। उसने मेरे संपूर्ण व्याख्यान को सुना और कुछ समय के पश्चात् मुझे इन श्लोकों का हिन्दी अनुवाद बना के सुनाया। मैं इसको देखके अति प्रसन्न हुआ, अत: मैंने जनता के हितार्थ इस मुकुन्दमाला नामक छोटी सी पुस्तिका को छपवाने का अनुमोदन किया। वही यह स्तोत्र-ग्रन्थ जनता के सम्मुख उपस्थित है। मुझे पूर्ण आशा है कि जनता को इस से किसी अंश में अवश्य आत्मिक लाभ प्राप्त होगा।

अस्तु, इस स्तोत्र के रचयिता राजा कुलशेखर हुए हैं। उन्होंने अपने इष्ट-देव भगवान् श्री कृष्ण (श्री नारायण) की स्तुति इतने सुन्दर मर्माहत तथा विनीत शब्दों में की है कि पाठक इन श्लोकों को बार बार पढ़ने का चाव रखता है। इन श्लोकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक भक्त को अपने प्रभु के प्रति कितना प्रेम, कितनी उत्सुकता तथा कितनी तन्मयता होती है। अन्त में इतना कहना ही पर्याप्त है कि इस स्तोत्र में छिपे हुए नवीनतम भाव अपनापन लिए हुए हैं।

बहुत वर्ष हुए इसके श्लोकों का अनुवाद स्वर्गीय श्री माधवानन्द जी ने किया था, किन्तु न जाने क्योंकर उस अनुवाद में पर्याप्त अशुद्धियां थीं। इसके अतिरिक्त और भी किसी ने इन श्लोकों का अनुवाद किया है, किन्तु उसमें भी छापे की अशुद्धियां तथा भाषा-सम्बन्धी अशुद्धियां दीख पडती हैं, अतः यह तीसरा प्रयास जनता की सेवा में उपस्थित है। आशा है यह प्रयास जनता को इस स्तोत्र की ओर पूर्ण-रूप से आकर्षित करने में समर्थ होगा। ओं शांतिः ॥

गुप्तगंगा, कश्मीर
अक्टोबर १९६३

ब्रह्मचारी लक्ष्मण

निवेदन

चरण-कमल बदौं हरि-राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धे को सब कछु दरसाई।

किसी पूर्व पुण्यपुञ्ज के फलस्वरूप मुझे श्री स्वामी ईश्वर-स्वरूप जी महाराज के पास मुकुन्दमाला की सुन्दर स्तुति के अध्ययन का लाभ प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् प्रातः स्मृनीय स्वामी जी की प्रेरणा तथा अपने पूज्य पिता जी के आग्रह से मैंने इन श्लोकों का भाषानुवाद और सारांश लिखा। यह मेरा प्रथम प्रयास विद्वानों तथा विज्ञ पुरुषों के सामने केवल मेरी तोतली वाणी का ही प्रदर्शन है। यदि भक्तजनों को इस से कुछ लाभ प्राप्त हो तो यह मेरा बाल-विनोद मेरे हर्ष का कारण बनेगा।

इस अनुवाद का संशोधन मेरे पिता जी ने किया।

विनीता—
इन्दुमति कौल, प्रभाकर,

अथ मुकुन्दमाला

ॐ वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं
कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेषम् ।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ॥१ ॥

अर्थ :—जिसकी आंखें कमल के पत्ते की तरह लम्बी हैं, कुन्द फूल, चन्द्रमा और शंख की तरह जिसके दांत सफेद हैं, जो ग्वालबाल के वेश में है, जिसके पाद-पीठ (पैरों की चौकी) को इन्द्रादि देवता-गण वन्दना करते हैं और जो वसुदेव का सन्तान है उसी नारायण को मैं वन्दना करता हूं ।

सारांश :— मैं भगवान की महानता और उसकी लीलाओं का अनुभव करता रहूं ।

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति
भक्तप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति ।
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासे-
त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरुमां मुकुन्द ॥२॥

अर्थ :— "हे मुकुन्द ! हे लक्ष्मी के प्यारे ! हे वर को देने वाले ! हे दया में लगे हुए ! हे भक्तों के प्यारे ! हे संसार के बीच लुढकने में भी पण्डित (चतुर) ! हे शेषनाग पर सोने वाले ! और हे जगत में निवास करने वाले !" ये ही आलाप करता हुआ मैं सदैव बना रहूं ।

सारांश :— मैं सदा भगवान के नामों का जप करते हुए उनके स्वरूप का ध्यान करने वाला रहूं ।

जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः ।
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥३॥

अर्थ :— हे मुकुन्द ! देवकी को आनन्द देने वाले ! आपको जय जयकार हो, कृष्ण जो यादव-कुल का प्रदीप (चराग) है उसी आपको जय जयकार हो, जो बादल की तरह श्याम रंग वाला है और जिसके अंग कोमल हैं उसी आपको जय जयकार हो और जो पृथ्वी के भार (पापों) को नाश करने वाला है उसी नारायण को जयजयकार हो ।

सारांश :— विभिन्न नामों वाले आप लीलामय नारायण के स्वरूप में मैं लीन हो जाऊं ।

मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे
भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम् ।

अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे
भवे भवे मेऽस्तु भवत्प्रसादात् ।।४।।

हे नारायण! मैं आपका सिर से (नत-मस्तक होकर) प्रणाम करता हूं और मैं आप से केवल यही एक वर मांगता हूं कि मैं जन्म-जन्मान्तर में आपके प्रसाद से आपके चरण-कमलों का स्मरण भूल न जाऊँ।

सारांश :— मैं नित्य और निरन्तर भगवान का स्मरण करता रहूं।

श्रीमुकुन्दपदाम्भोजमधुनः परमाद्भुतम् ।
यत्पायिनो न मुह्यन्ति मुह्यन्ति यदपायिनः ।।५।।

अर्थ :— श्रीमुकुन्द के चरण-कमलों का मद्य (शराब) बहुत ही अलौकिक है जिसको पीकर (भक्तजन) मोह में नहीं पड़ते हैं और जिसको (अभक्तजन या संसारी लोग) न पीकर ही मोह में पड़ जाते हैं।

सारांश :—भगवान के यथार्थ स्वरूप का निरन्तर ध्यान करने से ही मनुष्य माया-मोह से निवृत्ति प्राप्त कर सकता है।

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम् ।
रम्यारामामृदुतनुलतानन्दनेनापि रन्तुं
भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ।।६।।

अर्थ :— हे नारायण ! मैं अद्वैत स्वरूप सिद्ध होने के लिए आपके चरण-कमलों की जोड़ी को प्रणाम नहीं करता, न कुम्भीपाक के भयंकर नरक को हटाने के लिए ही और इन्द्र के बाग में, जिसमें कोमल और सूक्ष्म लताएं हैं उसमें सुन्दर अप्सराओं की क्रीड़ा के लिए भी नहीं, परन्तु मैं हर अवस्था में हृदय रूपी भवन में आपकी ही भावना करूं। इसीलिए मैं आपकी वन्दना करता हूं।

सारांश :— मुझे अद्वैतवादी होने का अभिमान न हो। इहलोक और परलोक के भोगों में वैराग्य हो और स्वस्वरूप का निरन्तर ध्यान रहे।

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्यद्भव्यं भवतु भगवन्पूर्वकर्मानुरूपम् ।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥७॥

अर्थ :— हे भगवान् ! मुझे लौकिक धर्म में भी विश्वास नहीं है, न धन के जोड़ने में, और न कामनाओं के भोगने में ही विश्वास है। जो मेरे प्रारब्ध के अनुसार भोग प्राप्त हों वे होते रहें। मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूं कि मुझे आपके चरण-कमलों की जोड़ी में जन्मजन्मान्तर में निश्चल भक्ति हो, क्योंकि मैंने आपकी भक्ति को ही बहुत माना है।

सारांश :— निज कर्मानुसार (प्रारब्धवश) लोक में भोग भोगता हुआ भी मैं भगवान की अचल भक्ति का भाजन बना रहूं।

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो
नरके वा नरकान्तक प्रकामम् ।
अवधीरितशारदारविन्दौ
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥८॥

अर्थ :— हे नरक के शत्रु भगवान ! मुझे निश्चय करके स्वर्ग लोक में, मर्त्यलोक में या नरक लोक में निवास करना हो (परन्तु) आपके चरण-कमल जिनसे शरद्-काल के कमल को भी अनादर होता है, उन्हीं की मैं मरण-काल में भी चिन्ता करता रहूं।

सारांश :— प्रारब्धानुसार संसार की किसी भी परिस्थिति में रहते हुए मुझे अन्त तक भगवान के स्वरूप का चिन्तन बना रहे।

सरसिजनयने सशंखचक्रे
मुरभिदि मा विरमेह चित्त रन्तुम् ।
सुखतरमपरं न जातु जाने
हरिचरणस्मरणामृतेन तुल्यम् ॥९॥

अर्थ :— हे मन ! जिस नारायण के नेत्र कमल के पत्ते जैसे हैं, जो शंख और चक्र धारण किये हुए हैं और जो मुरदैत्य का नाशक नारायण है, उसमें राग करने से मत रुको। निश्चय ही मैं हरि के चरणों के स्मरण रूपी अमृत के समान दूसरा कोई सुख नहीं जानता हूं।

सारांश :— मन को भगवत-चिन्तन में लगाने से ही स्वरूप लाभ होना सम्भव है।

मा भैर्मन्दमनो विचिन्त्य बहुधा यामीश्चिरं यातना
नामी नः प्रभवन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः।
आलस्यं व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं।
लोकस्य व्यसनापनोदनकरो दासस्य किं न क्षमः।११।

अर्थ :— हे मूर्ख मन ! चिर-काल-वर्ती यमराज की पीड़ाओं की चिन्ता से मत डरो, यह पाप की शत्रु पीड़ाएं हमें दबाने में समर्थ नहीं हैं। निश्चय करके हमारे स्वामी वही लक्ष्मी-पति नारायण हैं। (अत:) आलस्य को दूर भगाकर भक्ति के द्वारा जो नारायण सुलभ है उसीका ध्यान कर। जो लोगों के दु:खों को दूर करने में समर्थ हैं, वह क्या मुझ दास के दु:खों को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकते ? अर्थात् वह मुझ दास के दु:खों को अवश्य दूर कर सकते हैं।

सारांश :— आलस्य को त्याग कर और पुरुषार्थ से बल पाकर ही मन को भगवत्-चिन्तन में लगाने से मनुष्य ईश्वर-अनुग्रह का भाजन बन सकता है।

भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं
कथमहमिति चेतो मास्म गाः कातरत्वम् ।
सरसिजदृशि देवे तावकी भक्तिरेका
नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥११॥

अर्थ :— हे मन! "संसार रूपी सागर जो कठिन और गहरा है, उसमें मैं किस तरह पार हो जाऊँ", यह विचार कर कायर मत बनो। जिस देव कृष्ण के नेत्र कमलपत्र के समान हैं, जो नरक को भी नाश करने में प्रवीण है, केवल उसी की भक्ति ही तुम्हें इस (भवसागर) से अवश्य पार ले जायेगी।

सारांश :— मन को भगवत्-चिन्तन में लगाने से ही मनुष्य इस भवसागर से पार हो सकता है।

तृष्णातोये मदनपवनोद्धूतमोहोर्मिमाले
दारावर्ते तनयसहजग्राहसङ्घाकुले च ।
संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधामन्
पादाम्भोजे वरद भवतो भक्तिनावं प्रसीद ॥१२॥

अर्थ :— हे तीन लोकों अर्थात् तीन अवस्थाओं के स्वामी! हम संसार रूपी महान् समुद्र में, जिसमें तृष्णा रूपी जल है, कामदेव रूपी लहरों की मालाएं, (विषय-भोग-प्रधान) स्त्री रूपी भंवर (आवलुन) और सन्तान सुन्दर मगरमच्छों

का समूह जैसा है, (इन्हीं के मेल से इसमें) डूबे हुए हैं। वर को देने वाले हे नारायण ! हमें अपनी चरण-कमलों की भक्ति रूपी किश्ती में ही आश्रय दो।

सारांश :— मनुष्य को जाग्रत आदि तीनों अवस्थाओं में पुरुषोत्तम भगवान का ध्यान दृढ होने पर ही द्वैत-भ्रम का नाश होकर जीवन-मुक्ति का लाभ प्राप्त हो सकता है।

पृथ्वी रेणुरणुः पयांसि कणिका फल्गुः स्फुलिङ्गोलघु-
स्तेजो निःश्वसनं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः
क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुराः
दृष्टे यत्र स तावको विजयते भूमावधूतावधिः ।१३।

अर्थ :— जिस आपका साक्षात्कार करने पर पृथ्वी एक धूल का कण दिखाई देती है, जल छोटी बूंद बनता है, तेज़ आग की छोटी चिंगारी, वायु एक सांस मात्र रहता है और आकाश एक सूक्ष्म छेद जैसा प्रतीत होता है, शिव और ब्रह्मा आदि सब देवता छोटे कीड़े जैसे दिखाई देते हैं, उसी आपके उत्तम से उत्तम असीम सुख की जय हो।

सारांश :— उस पुरुषोत्तम परब्रह्म का साक्षात्कार होने पर पंच-भूतों की कोई सत्ता नहीं रहती है और द्वैत परम्परा में पड़े हुए देवता-गण भी तुच्छ बन जाते हैं।

आम्नायाभ्यसितान्यरण्यरुदितं कृच्छ्रव्रतान्यन्वहं
मेदच्छेदफलानि पूर्तविधयः सर्वं हुतं भस्मनि ।

तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पद-द्वन्द्वाम्भोरुहसंस्तुतिं विजयते देवः स नारायणः ॥

अर्थ :— जिस नारायण के चरण-कमलों की जोड़ी की स्तुति के बिना शास्त्रों का अभ्यास करना जगल में रोने के समान निष्फल हो जाता है, प्रतिदिन रखे हुए कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत केवल त्वचा तथा चर्बी को ही पिगलाते हैं। परोपकार के पूर्व कर्म भी भस्म में आहुति ड़ालने के तुल्य निष्फल हो जाते हैं, तीर्थों में स्नान करना हाथी के स्नान के समान निष्फल हो जाता है, उस नारायण की भक्ति का आश्रय ही फल-दायक है। अतः उसी नारायण की जय हो।

सारांश :— नारायण की अनन्य भक्ति के बिना शास्त्र विहित (विधान किये हुए) कर्म भी निष्फल ही होते हैं।

आनन्द गोविन्द मुकुन्द राम
नारायणानन्त निरामयेति।
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चित्
अहो ! जनानां व्यसनानि मोक्षे ॥१५॥

अर्थ :— आश्चर्य है कि मनुष्य—'हे आनन्द ! हे गोविन्द ! हे मुकुन्द ! हे राम ! हे नारायण ! हे अनन्त ! और हे राग रहित !' ये नाम कहने के लिए समर्थ होकर भी कभी नहीं कहते हैं, इसीलिए तो उन्हें मोक्ष (मुक्ति) मिलने में रुकावटें आ जाती हैं।

सारांश :— अमूल्य और देवदुर्लभ मानव-जन्म को प्राप्त करके भी मनुष्य अपने सहज स्वरूप को पहचानने का पुरुषार्थ नहीं करता । हाय ! यह कैसा माया-मोह है ।

क्षीरसागरतरङ्गशीकरासारतारकितचारुमूर्तये ।
भोगिभोगशयनीयशायिने माधवाय मधुविद्विषे नमः ॥

अर्थ :— क्षीर-सागर के लहरों से उठने वाली छींटों के बूछाड़ से मानो तारों की सुन्दर मूर्ति वाले लक्ष्मी-पति नारायण और शेषनाग रूपी भोग-शय्या पर शयन करनें वाले मधु राक्षस के शत्रु (मारनें वाले) नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ ।

सारांश :— परब्रह्म के स्वरूप में निमग्न होने से उसकी अनन्तता का अनुभव होता है । इस प्रकार कर्म-फलों के भोग से निर्लेप होकर मानव जीव-भाव के अहंकार को पर-प्रमातृ-भाव में लीन कर बैठता है ।

वात्सल्यादभयप्रदानसमयादार्तार्तिनिर्वापणात्
औदार्यादघशोषणादगणितश्रेयःपदप्रापणात् ।
सेव्यः श्रीपतिरेव सर्वजगतामेकान्ततः साक्षिणः
प्रह्लादश्च विभीषणश्च करिराट् पाञ्चाल्य-हल्या ध्रुवः ॥

अर्थ :— लक्ष्मीपति नारायण ही जगत के सब मनुष्यों द्वारा अधिकतर (छः प्रकार से) उपासना करने योग्य है,

इस के लिए अधिकतर साक्षी यह हैं :— (क) वात्सल्य (स्नेह) से प्रह्लाद का, (ख) अभय प्रदान के आचरण से विभीषण का, (ग) आर्त के दुःख को दूर करने से गजेन्द्र का, (घ) उद्धारता से द्रोपदी का, (ङ) अगणित पापों के नाश करने से अहल्या का और (च) मोक्ष पद के प्राप्त कराने से भक्त ध्रुव का उद्धार हुआ।

सारांश :— विशेष भक्तों के उदाहरण से यह स्वयं सिद्ध है कि भगवान की अनन्य उपासना करने से ही आत्मोद्धार होता है।

नाथे श्रीपुरुषोत्तमे त्रिजगतामेकाधिपे चेतसा
सेव्ये स्वस्य पदस्य दातरि परे नारायणे तिष्ठति
यं कञ्चित्पुरुषाधमं कतिपयग्रामेशमल्पार्थदं
सेवायै मृगयामहे नरमहो मूढा वराका वयम् ॥१८

अर्थ :— सर्व जगत के स्वामी, सर्व-समृद्ध पुरुषोत्तम, तीनों लोकों के एक स्वामी, मन से सेवा करने पर अपने पद को देने वाले परमात्मा और नारायण के होते हुए यदि हम किसी संकुचित लाभ देने वाले की इच्छा रखते हैं (तो) आश्चर्य है कि हम सब बेचारे मूर्ख ही हैं, जो जगत पति को छोड़कर इस अधम पुरुष की सेवा करते हैं।

सारांश :— ईश्वर की अनन्योपासना ही आत्मोन्नति का कारण हो सकती है।

हे लोकाःशृणुत प्रसूतिमरणव्याधेश्चिकित्सामिमां
योगज्ञाः समुदाहरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादयः।
अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां
तत्पीतंपरमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम्।१६।

अर्थ :— अरे लोगो! जन्म-मरण रूप व्याधि की इस चिकित्सा (इलाज) को सुनो, जिसे याज्ञवल्क्य आदि योगी और मुनि कहते हैं। श्री कृष्ण नाम रूपी अन्तर्ज्योति स्वरूप और परिमाण रहित अमृत को पी लो। उस परम औषधि को पीकर पारमार्थिक मोक्ष मिल जाता है।

सारांश :— अन्तर्ज्योति स्वरूप भगवान का ध्यान और नाम जप रूप औषधि ही भव-रोग को हटाकर आत्मोन्नति का साधन बन सकती है।

बद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः
कण्ठेन स्वरगद्गदेन नयनोद्गीर्णेन बाष्पाम्बुना।
नित्यंत्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतास्वादिना-
मस्माकंसरसीरुहाक्षसततंसम्पद्यतांजीवितम्।२०।

अर्थ :— हे कमलपत्र जैसे नेत्र वाले प्रभु! दोनों हाथ जोड़कर झुके हुए सिर से, रोमांच से भरे अंगों से, गदगद स्वर वाले कण्ठ से और नेत्रों से बहते हुए आंसुओं के जल

से हम प्रतिदिन आपके चरणों की जोडी के ध्यान-रूपी अमृत का स्वाद लेते हुए अपना सारा जीवन बिताते रहें।

सारांश :— सम्पूर्ण शरणागति भाव से निर्लेप भगवान के ध्यान में अवस्थित रहना ही यथार्थ में जीवन है।

तत्त्वंब्रु वाणानि परं परस्माद्
अहो क्षरन्तीव सुधां पदानि ।
आवर्तय प्राञ्जलिरस्मि जिह्वे !
नामानि नारायणगोचराणि ॥२१॥

अर्थ :— अरी जीभ! मैं हाथ जोड़कर तुमसे प्रार्थना करता हूं कि तुम उन नामों का बार बार जप करती रहो जो तत्त्व को कहने वाले बड़े से बड़े नारायण-सम्बन्धी नामों के पद, अमृत की तरह अति चकित विस्तार को प्राप्त होते हैं।

सारांश :— स्वरूप के नित्य स्मरण में रहना ही जप है।

इदं शरीरं परिणामपेशलं
पतत्यवश्यं श्लथसन्धिजर्जरम् ।
किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते
निरामयं कृष्णरसायनं पिब ॥२२॥

अर्थ :— यह शरीर परिणाम-स्वरूप मसलन वाला है, ढ़ीले जोड़ों वाला और जर्जर होने के कारण अवश्य नष्ट

होने वाला है। (अत:) हे दुर्बुद्धि वाले मूर्ख (जीव)! औषधियों (दवाइयों) के सेवन करने से क्यों कष्ट उठा रहे हो? माया की उपाधि रहित श्री कृष्ण नाम की औषधि पी लो (जिस से मायोपाधि रहित ब्रह्म अर्थात् स्वस्वरूप में स्थित होकर अक्षय आनन्द का उपभोग करोगे)।

सारांश :— क्षण-भंगुर और नाशवान इस शरीर का मोह छोडकर स्वरूपस्थिति का लाभ सम्भव है।

श्रीमान्नाम प्रोच्य नारायणाख्यं
के न प्राप्ता वाञ्छितं पापिनोऽपि।
हा नः पूर्वं वाक्प्रवृत्ता न तस्मिं-
स्तेन प्राप्तं गर्भवासादिदु:खम् ॥२३॥

अर्थ :—नारायण के शुभ नाम का (ध्यान-पूर्वक) उच्चारण करने से किन पापियों ने अपनी अपनी इच्छाओं के अनुसार फल नहीं पाया! शोक है कि हमारी वाणी उस (नारायण के नामोच्चारण) में पहले (पूर्व जन्मों में) प्रवृत्त न हुई थी। इसी से तो गर्भवास आदि (संसार के) दु:खों को हम प्राप्त हुए हैं।

सारांश :— ईश्वर-पराङ्मुख रहने से ही जीव मायाकार्य जगत के दु:खों से पीडित रहता है।

मा द्राक्षं क्षीणपुण्यान्क्षणमपि भवतो
भक्तिहीनान्पदाब्जे
मा श्रौषं श्राव्यबद्धं तव चरितमपा-
स्यान्यदाख्यानजातम्।

मास्प्राक्षं माधव त्वामपि भुवनपतिं
चेतसाऽपह्नुवानं
मा भूवं त्वत्सपर्याव्यतिकररहितो
जन्मजन्मान्तरेऽपि ॥२४॥

अर्थ :— हे लक्ष्मीपति नारायण ! आपके चरण-कमलों में भक्ति से रहित (अत:) क्षीण हुए पुण्य वाले जीवों को मैं न देखूँ, आपके चरित (गुणानुवाद) को छोडकर दूसरे कथा-कहानी कान धर कर न सुनूँ। आप (चौदह) भुवनों के स्वामी को मन से निषेध करने वाले का स्पर्श न करूं और इस जन्म अथवा दूसरे जन्मों में भी आपका ध्यान आदि पूजा से विमुख न रहूँ।

सारांश :— आत्मलाभ के लिए ईश्वरोन्मुख रहने से पहले विषयों से विमुख होना आवश्यक है।

मदन परिहर स्थितिं मदीये
मनसि मुकुन्द पदारविन्दधाम्नि ।
हरनयनकृशानुना कृशोऽसि
स्मरसि न चक्रपराक्रमं मुरारेः ॥२५॥

अर्थ :— हे कामदेव ! भगवान् नारायण के चरण-कमलों का स्थान जो मेरा मन बना हुआ है, उसमें तुम ठहरना छोड़ दो। तुम तो शिव के (तीसरे) नेत्र की अग्नि से दग्ध-प्राय बने हुए हो (और) नारायण के सुदर्शन चक्र के पराक्रम (बल) को स्मरण नहीं करते हो।

सारांश :— समग्र उन्नतियों का साधन एक मात्र ब्रह्मचर्य ही है।

दारा वाराकरवरसुता तेऽङ्गजोऽयं विरिञ्चिः
स्तोता वेदास्तव सुरगणो भृत्यवर्गः प्रसादः।
मुक्तिर्मध्ये जगदविकलं तावकी देवकीयं
माता मित्रं बलिरिपुसुतस्तत्त्वतोन्यन्न जाने॥२६॥

अर्थ :— क्षीर सागर की उत्तम पुत्री आपकी स्त्री है, ब्रह्मा आपका पुत्र है, चार वेद (आर्ष) आपकी स्तुति करते हैं, देवता गण ही आपके नौकरों का समूह है, जगत के बीच में रहते हुए व्याकुल न होनें का अनुग्रह ही मुक्ति है, देवकी आपकी माता है, बलि के शत्रु का पुत्र आपका मित्र है। इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता हूँ।

सारांश :— भगवान् नारायण ही वेदों और देवताओं का आदि कारण है। अतः उसकी सत्ता सर्वजगत में व्याप्त है। सच्चे भक्तों को यही निश्चय होना चाहिए।

जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरं
पाणिद्वन्द्व समर्चयाच्युत कथाः श्रोत्रद्वय त्वं शृणु।
कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयं
जिघ्र घ्राण मुकुन्दपादतुलसीं मूर्धन्नमाधोक्षजम्।२७।

अर्थ :— अरी जीभ! केशव का कीर्तन करते रहो, हे मन! मुरारी का भजन करते रहो, हे दो हाथो! लक्ष्मीपति

नारायण की पूजा करते रहो, हे दो कानो! तुम अच्युत नारायण की कथाओं को सुनते रहो, हे दो नेत्रो! भगवान् कृष्ण के ध्यान में ही मग्न रहो, हे दो पैरो! हरि के मन्दिर की यात्रा करते रहो, हे नासिका! तुम मुकुन्द के पादों पर अर्पित तुलसी को सूंघते रहो और हे सिर! तुम इन्द्रियों से अतीत नारायण को नमन करते रहो।

सारांश :—इन्द्रियों को विषयों से हटाकर नारायण में लीन करना ही श्रेयस्कर है।

यत्कृष्णप्रणिपातधूलिधवलं तद्वै शिर:स्याच्छुभं
ते नेत्रे तमसोज्झिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते।
सा बुद्धिर्नियमैर्यमैश्च विमला या माधवध्यायिनी
सा जिह्वाऽमृतवर्षिणी प्रतिपदं या स्तौति
नारायणम् ॥

अर्थ :— वही सिर सार्थक है जो कृष्ण भगवान को प्रणाम करने से धूलि धूसरित (अर्थात् धूलि से सफेद) हुआ हो। वे ही (अज्ञान रूप) अन्धकार को हटाये हुए सुन्दर नेत्र (अर्थात् दिव्य चक्षु) है जिन से भगवान हरि का दर्शन (साक्षात्कार) किया जाता हो। नियम (जप, तप, दान आदि द्वारा इन्द्रिय निग्रह) और यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि द्वारा मनोनिग्रह) का सेवन करने से निर्मल बनी हुई बुद्धि (जिसे 'ऋतम्बरा' प्रज्ञा कहते हैं), वही है जो नारायण का ध्यान करती हो और वही प्रत्येक वार्ता में (कथि-पत्-कथि

प्यठ) अमृत वर्षन करने वाली जिव्हा है जो (मन और वाणी को एक करके) नारायण की स्तुति में लगी हो।

सारांश :— इन्द्रियों द्वारा आगोचर भगवान का साक्षात्कार करने के लिए पहले उनके विषयों के मोह से सर्वथा निवृत्त होना आवश्यक है।

भक्तद्वेषभुजङ्गरुडमणिस्त्रैलोक्यरक्षामणि-
र्गोपीलोचनचातकाम्बुदमणिः सौन्दर्यमुद्रामणिः।
श्रीकान्तामणिरुक्मिणीघनकुचद्वन्द्वैकभूषामणिः
श्रेयो ध्येयशिखामणिर्दिशतु नो गोपालचूडामणिः॥

अर्थ :— बाल कृष्ण गोपाल (अर्थात् वेदों में गाया हुआ भगवान नारायण) रूप (जो) शिरोरत्न (अर्थात् सर्वाराध्य देव है, जो) भक्तों में द्वेष रूप सांप को नष्ट करने वाला गरुड़ रूपी रत्न (है, जो) त्रिलोकी की रक्षा करने वाला रत्न (है, जो) सुन्दरता रूप अंगूठी का रत्न (है, जो) प्यारी लक्ष्मी का रत्न (है जो) रुक्मिनी के (ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति रूप) घने वक्षस्थल का केवल भूषण बना हुआ रत्न (है और जो) ध्यान करने योग्य चर्मावस्था रूप रत्न (है, वह) हम (भक्तों को) कल्याण प्रदान करे।

सारांश :— देवादिदेव परब्रह्म के स्वरूप का अनुभव उसी के अनुग्रह से, माया के मोह को लांग कर ही, होना सम्भव है।

शत्रुच्छेदैकमन्त्रं सकलमुपनिषद्वाक्यसम्पूज्यमन्त्रं
संसारोत्तारमन्त्रं समुदिततमसां संघनिर्याणमन्त्रम्।
सर्वैश्वर्यैकमन्त्रं व्यसनभुजगसन्दष्टसन्त्राणमन्त्रं
जिह्वे श्रीकृष्णमन्त्रं जप जप सततं जन्मसाफल्य-
मन्त्रम् ॥

अर्थ :— हे जीभ ! शत्रु के मारने का (अर्थात् द्वैत का निवारण करने वाला) एक ही मन्त्र, सारे उपनिषद वाक्यों द्वारा पूजा के योग्य मन्त्र, संसार से पार उतारने वाला मन्त्र, (अज्ञान रूप) अन्धकार जिनमें पैदा हुआ हो उनके समूह को हटाने वाला मन्त्र, सब ऐश्वर्यों का (देने वाला) एक ही मन्त्र, विषयादि दु:ख रूपी सांपों के काटने से बचाने वाला मन्त्र, श्री कृष्ण नाम का मन्त्र जो (जीव के) जन्म को सफल बनाने वाला अर्थात् अभेद दृष्टि देने वाला मन्त्र है उस (मन्त्र) का बार बार जप करती रहो।

सारांश :— ईश्वर के गुणों का लगातार मनन करते रहने से ही जीव को संसार के दु:खों से रक्षा हो सकती है।

व्यामोहोद्दलनौषधं मुनिमनोवृत्तिप्रवृत्यौषधं
दैत्यानर्थकरौषधं त्रिभुवने सञ्जीवनैकौषधम्।
भक्तार्तिप्रशमौषधं भवभयप्रध्वंसि दिव्यौषधं
श्रेय:प्राप्तिकरौषधं पिव मन:श्रीकृष्णनामौषधम्।

अर्थ :-- हे मन ! श्रीकृष्ण के नामोच्चारण रूप औषधि जो संसार रूप घने मोह) को नष्ट करने वाली औषधि (है, जो) मननशील (योगियों) की मनोवृति को एकाग्र करने की औषधि (है, जो भूः भुवः और स्वः, इन) तीनों भुवनों में केवल संजीवन रूप (अर्थात् अभेद भक्ति की) औषधि (है, जो) भक्तों के दुःखों को शमन करने वाली औषधि (है, जो) संसार के (जन्म-मरण रूप) भय को नाश करने वाली अलौकिक औषधि (है और जो अत्मोन्नति रूप) कल्याण को प्राप्त कराने वाली औषधि (है, उसको) सदा के लिए पीता रह ।

सारांश :— श्रीकृष्ण के नामोच्चारण द्वारा परब्रह्म के ध्यान में एकाग्रता से दृढ़ता प्राप्त करना ही मोह-मय और भेद-संकुल संसार-द्वन्द्व रूप रोग की औषधि है ।

आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोके
सुधांपरित्यज्य विषं पिवन्ति ।
नामानि नारायणगोचराणि ।
त्यक्त्वान्यवाचः कुहकाः पठन्ति ॥३२॥

अर्थ :— यह आश्चर्य ही है (कि इस) मनुष्य लोक में (देव-दुर्लभ मानव-जन्म को प्राप्त करके लोग अद्वैत रूप) अमृत को छोड़कर (द्वैत रूप) विषय भोग रूपी विष को पीते रहते है (क्योंकि वे) नारायण का साक्षात्कार कराने वाले (उसके) नामों (के उच्चारण को) छोडकर दूसरी बातों का (अनात्म वर्ग सम्बन्धी अर्थात् विषय-वासाना रूप निरर्थ) बकवास करते रहते हैं ।

सारांश :— देव-दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर जीव को आत्म-लाभार्थ विषय-वासना से सर्वथा विरक्त होकर भगवान के भजन ध्यान में मग्न रहना चाहिए।

लाटी नैत्रपुटी पयोधरघटी क्रीडाकुटी दोस्तटी
पाटीरद्रुमवर्णनेन कविभिर्मूढैर्दिनं नीयते।
गोविन्देति जनार्दनेति जगतां नाथेति कृष्णेति च
व्याहारैः समयस्तदेकमनसां पुंसां परिक्रामति।३३।

अर्थ :— भेद बुद्धि वाले मूर्ख कवि (संसार के मोह को बढ़ाने वाले और क्षण-भंगुर) प्रेमिका - सौन्दर्य के विषय-वर्णन में दिन गुज़ारते हैं। (परन्तु) एकाग्र मन वाले (भक्त-योगी) 'हे गोविन्द! हे जनार्दन! हे तीन लोकों के नाथ! और हे कृष्ण!" (इस प्रकार के) वचन बोलने में ही समय लगाते हैं।

सारांश :— विषय-वासना का सर्वथा त्याग करना और भगवत्-चिन्तन में सदा लीन रहना ही मनुष्य केलिए श्रयस्कर है।

अयाच्यमक्रेयमयातममपाच्यमक्षय्यमदुर्भरं मे।
अस्त्येव पाथेयमतिप्रयाणे श्रीकृष्णनामामृत-
भागधेयम्।३४।

अर्थ :— (इस जन्म की) अन्तिम लम्बी यात्रा के लिए मेरे पास श्री कृष्ण का नाम-अमृत रूप सौभाग्य ही रास्ते का भोजन है (जो) न उधार लाया है, न खरीदा है, न भासी है, न पकाने की आवश्यकता रखता है, न क्षय होने

वाला है और न दुःख देने वाला भोज ही है।

सारांश :— भगवत्-नाम स्मरण ही आत्मोन्नति का सरल उपाय है।

यस्य प्रियौश्रुतिधरौ रविलोकगीतौ
मित्रे द्विजन्मपरिवार शिवावभूताम्।
तेनाम्बुजाक्षचरणाम्बुजषट्पदेन
राज्ञा कृता स्तुतिरियं कुलशेखरेण ॥३५॥

इति श्रीकुलशेखर राज्ञा कृता मुकुन्दमाला स्तुतिः सम्पूर्णा ॥

अर्थ :— जिस (राजा) के दो प्रिय मित्र श्रुत-परायण थे, ज्ञाता थे, जिनका यश सूर्यलोक तक व्याप्त था और जो ब्राह्मण परिवार में कल्याणरूप ही पैदा हुए थे, उस, कमल, नेत्र श्रीकृष्णचन्द्र के चरण-कमलों के भ्रमर बने, राजा कुलशेखर ने यह स्तुति रची।

इस प्रकार इन्दुमतिकृत मुकुन्दमाला स्तुति का
भाषानुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥

मुकुन्दमाला का परिशिष्ट भाग
(क्षेपक श्लोक)

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारावृतानाम् ।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥१५॥-१

अर्थ :— संसार समुद्र में डूबे हुए, शीतोष्णादि द्वन्द्वों के वायु से छिन्न भिन्न किये हुए, (आसक्ति के कारण) पुत्र, पुत्री और स्त्री की रक्षा के भार से घिरे हुए, कठिन विषयों रूपी जल में डूबे हुए, आश्रय देने वाली किश्ती (यम, नियम, साधन युक्त सुदृढ़ शरीर) से रहित बने हुए मनुष्यों को केवल विष्णु रूपी जहाज़ ही शरण देने वाला है।

सारांश :— संकल्प-विकल्प रूप दु:ख से पूर्ण इस संसार में केवल भगवान विष्णु का आश्रय ही (साधक) मनुष्य को कैवल्य सुख प्रदान करने में समर्थ है।

रजसि निपतितानां मोहजालावृतानां
जननमरणधूलीदुर्गति सङ्गतानाम् ।

शरणमशरणानामेक एवातुराणां
कुशलपथि नियोक्ता चक्रपाणिर्नराणाम् ॥१६॥-२

अर्थ :— रजोगुण रूपी धूल में डूबे हुए मोह रूपी जाल से घेरे हुए, जन्म-मरण की आंधी की दुर्गति में मिले हुए, (इस प्रकार) असहाय बने हुए दु:खी मनुष्यों को आत्म-उन्नति के कुशल मार्ग में लगाने वाला सुदर्शन-चक्र-धारी नारायण ही केवल एक सहारा है।

सारांश :— संसार के दु:खों का अनुभव करके जिन प्राणियों में वैराग्य उत्पन्न हुआ हो, उनको नारायण ही कल्याण मार्ग पर चलने का अनुग्रह करते हैं।

अपराधसहस्रसङ्कुलं,
पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे!
कृपया केवलमात्मसात्कुरु ॥१७॥-३

अर्थ :— हे हरि! हज़ारों अपराधों में बन्धे हुए, भयंकर संसार रूपी समुद्र के बीच में पड़े हुए, निवृत्ति उपाय से रहित और शरण में आये हुए (मुझ) पर कृपा करके केवल अपने स्वरूप में लीन कीजिये।

सारांश :— संसार के दु:खों से पीड़ित मनुष्य का भी उद्धार भगवान अपनी अनुग्रह-शक्ति से करने में समर्थ है।

यच्चिन्तितं च मनसा वचसा निरुक्तं
चक्षुःकरश्रवणपादविचेष्टितं च ।
यद्यन्निशासु दिवसेषु कृतं मयैव
तत्तज्जनार्दन तवार्चनमेव भूयात् ॥८॥-४

अर्थ :— हे जनार्दन (पापी जनों का मर्दन करने वाले) ! जो कुछ मैंने मन में चिन्तन किया है, जो मैंने वाणी से कहा है, जो मैंने हाथ कान, आंख और चरण से चेष्टाएं की हैं और जो कर्म मैंने रात और दिन में किये हैं, वे (सब) मुझे आपकी ही पूजा बन जाए ।

सारांश :— भगवत् अनुग्रह चाहने वाले भक्त के आन्तरिक और बाह्य सब कर्म भगवत्-अर्पण ही होते हैं ।

मा मे स्त्रीत्वं मा च मे दासभावो
मा मूर्खत्वं मा कुदेशेषु जन्म ।
मिथ्यादृष्टिर्मा च मे स्यात्कदाचि-
ज्जातौ जातौ विष्णुभक्तो भवामि ॥१६॥-५

अर्थ :— (हे भगवान !) मुझे स्त्री-भाव (विषयोन्मुख होने के कारण चंचल स्वभाव) न मिले, न मुझे दास भाव मिले, न मैं मूर्ख भाव में रहूं, न मेरा जन्म बुरे देश में हो (जहां साधना में बाधा हो और सज्जनों का अभाव हो) और न

मुझे कभी भी अनात्म-दृष्टि (देह-बुद्धि) हो, बल्कि में जन्म-जन्मान्तरों में विष्णु का भक्त बना रहूँ।

सारांश :— देह-बुद्धि को बढ़ाने वाली परिस्थितियों की उपेक्षा (तिरस्कार) करके ही भक्त भगवान के अनन्य-शरण-भाव को प्राप्त होता है।

क्षीरसारमपनीय शङ्कया,
स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया ।
मानसे मम नितान्ततामसे,
नन्दनन्दन कुतो न लीयसे ॥२२॥-६

अर्थ :— हे नन्द गोप को आनन्द देने वाले श्री कृष्ण भगवान ! यदि आपने मक्खन की चोरी करने की शंका से भाग जाना स्वीकार किया है तो घने अन्धकार से भरे हुए मेरे मन में क्यों नहीं छिप जाते हो।

सारांश :— अज्ञान अन्धकार से भरे हुए मन वाला पुरुष भी यदि स्वयं-प्रकाश भगवान का ध्यान करे तो उसे भगवान का प्रसाद होना सम्भव है।

—इति—

परिशिष्ट-क

ॐ नमः शिवाय

अथ उत्पलदेवकृतं संग्रहस्तोत्रम्

संग्रहेण सुखदुःखलक्षणं
मां प्रति स्थितमिदं श्रृणु प्रभो !
सौख्यमेष भवता समागमः
स्वामिना विरह एव दुःखिता ॥१॥

अर्थ :— हे प्रभो ! मेरे लिए सुख क्या है और दुःख क्या है, यह मैं आपको संक्षेप से कह दूँ । आप कान धर कर सुनिए । यह जो आपके साथ मेरा तन्मयीभाव है यही सुख है। आप प्रत्यक् अभिन्न आत्मा से वियोग ही मेरा दुःख है।

अन्तरप्यतितरामणीयसी
या त्वदप्रथनकालिकास्ति मे ।
तामपीश परिमृज्य सर्वतः
स्वं स्वरूपममलं प्रकाशय ॥२॥

अर्थ :—यदि मेरे चित्त में ज़रा सी भी मलिनता (आणवमल से छिपा ज्ञान) है जिसे आप चित्स्वरूप का साक्षात्कार प्रकट-रूप से नहीं होता तो उसको भी पूर्ण रूप से दूर करके अपने चिदानन्दमय निर्मल स्वरूप को प्रकट कीजिए ।

तावके वपुषि विश्वनिर्भरे
चित्सुधारसमये निरत्यये ।
तिष्ठतः सततमर्चतः प्रभुं
जीवितं मृतमथान्यदस्तु मे ॥३॥

अर्थ :— मैं चाहता हूं कि मैं आपके अविनाशी, जगत् में प्रकाशरूप चिदानन्दरूपी अमृत-रस से भरे हुए, स्वरूप में लीन होकर ही लगातार आपकी पूजा में लगा रहूं । फिर चाहे मैं जीवित रहूं या मर जाऊँ अथवा मोक्ष प्राप्त हो ।

ईश्वरोऽहमहमेव रूपवान्
पण्डितोऽस्मि सुभगोऽस्मि कोऽपरः ।
मत्समोऽस्ति जगतीति शोभते
मानिता त्वदनुरागिणः परम् ॥४॥

अर्थ :— मैं ईश्वर (स्वतन्त्र) हूं, मैं ही सुन्दर (चित्प्रकाश से उज्जवल) हूं, मैं ज्ञानवान् (तत्त्वदर्शी) हूं, मैं ही (परमानन्दरस से पूर्ण) सौभाग्य वाला हूं और इस जगत में मेरे समान

दूसरा कौन है" –ऐसे स्वाभिमान की भावना (पूर्णाहुन्ता) आपके ही भक्त को अत्यन्त शोभा देती है (क्योंकि वह समावेश में आपके साथ एकात्मता का अनुभव करता है)।

देवदेव भवदद्वयामृता-
ख्यातिसंहरणलब्धजन्मना ।
तद्यथास्थितपदार्थसंविदा
मां कुरुष्व चरणार्चनोचितम् ।।५।।

अर्थ :— इसलिए, हे देवादिदेव ! आपके अद्वैतामृत का अज्ञान नष्ट होने पर जो स्वरूप साक्षात्कार रूप ज्ञान उत्पन्न होता है ऐसे चिद्रूप से अभिन्न होने वाले सभी पधार्थों के ज्ञान से मुझे अपने चरणों की पूजा करने के योग्य बना दीजिए।

ध्यायते तदनु दृश्यते ततः
स्पृश्यते च परमेश्वरः स्वयम् ।
यत्र पूजनमहोत्सवः स मे
सर्वदास्तु भवतोऽनुभावतः ।।६।।

अर्थ :— जिस से (आपके अनुग्रह से प्राप्त अभ्यास द्वारा) परमेश्वर का आप से आप ध्यान किया जाता है, उसके बाद समावेश में दिखाई देता है और फिर अनायास ही स्पर्श किया जाता है वही आपकी पूजा का बड़ा उत्सव आपके दिए अनुभव की युक्ति से मुझे सदा प्राप्त रहे ।

यद्यथास्थितपदार्थदर्शनं
युष्मदर्चन महोत्सवश्चय:
युग्ममेतदितरेतराश्रयं
भक्तिशालिषु सदा विजृम्भते ॥७॥

अर्थ :— (ज्ञानकाल में) सभी सांसारिक वस्तुओं को आप चिद्रूप से अभिन्न देखना और (ध्यान, दर्शन और स्पर्शन— भक्तिकाल में) आपकी पूजा का उत्सव, ये दोनों बातें एक दूसरे पर आश्रित रहती हैं। आपके अनन्य भक्तों में इन दोनों बातों का (क्रम-मुद्रा से) सदा विकास होता है।

तत्तदिन्द्रियमुखेन सन्ततं
युष्मदर्चनरसायनासवम्।
सर्वभावचषकेषु पूरिते-
ष्वापिबन्नपि भवेयमुन्मद: ॥८॥

अर्थ :— आपकी पूजा (स्वरूप-परामर्श) के रसायन-रूपी मदिरा को लबालब भरे हुए सारे पदार्थ-रूपी प्यालों में सभी इन्द्रिय-रूपी मुखों से, लगातार (पूर्णरूप से) पीते हुए ही मैं मतवाला (चित्स्वरूप के आनन्द में मग्न) बना रहूं।

अन्यवेद्यमणुमात्रमस्ति न
स्वप्रकाशमखिलं विजृम्भते।

यत्र नाथ भवत: पुरेस्थितिं
तत्र मे कुरु सदा तवार्चितुः ॥६॥

अर्थ :— हे स्वामी! जिस स्थिति में आप से भिन्न जानने योग्य वस्तु ज़रा सी भी नहीं रहती है और सारा जगत् स्वप्रकाशरूप होकर विकसित होता है उसी आपकी (जगदानन्द) नगरी में आपकी पूजा करने में लगे हुए मुझको सदा स्थान दीजए।

दासधाम्नि विनियोजितोऽप्यहं
स्वेच्छयैव परमेश्वर त्वया।
दर्शनेन न किमस्मि पात्रितः
पादसंवहनकर्मणापि वा ॥१०॥

अर्थ :— हे परमेश्वर! आपने अपनी अनुग्रहशक्ति से ही मुझे अपने दास की पदवी पर लगा दिया है। फिर क्या बात है कि अपने दर्शन और चरण-कमल दबाने के काम के लिए भी पात्र नहीं बनाते।

शक्तिपातसमये विचारणं
प्राप्तमीश न करोषि कर्हिचित्।
अद्य मां प्रति किमागतं यत:
स्वप्रकाशनविधौ विलम्बसे ॥११॥

अर्थ :— हे अपनी इच्छा में स्वतन्त्र प्रभो! मुझपर शक्तिपात (अनुग्रह) करने के समय आपको विचार करना चाहिए था (कि मैं पात्र हूं या नहीं), किन्तु आप कभी ऐसा करते ही नहीं। आज मुझपर ऐसी क्या आ पडी है जो अपने चित्-प्रकाश की झलक दिखाने में देर लगाते हो।

तत्र तत्र विषये बहिर्विभा-
त्यन्तरे च परमेश्वरीयुतम्।
त्वां जगत्त्रितयनिर्भरं सदा
लोकयेय निजपाणिपूजितम् ॥१२॥

अर्थ :— (मेरी प्रार्थना है कि) मैं बाहर (जगत में) और भीतर (चित्त में) सभी विषयों में परा-शक्ति देवी से युक्त भासमान और तीनों लोकों से परिपूर्ण आपको अपने हाथों से पूजा करते हुए ही सदा (समाधि में भी और व्युत्थान में भी) देखता रहूं।

स्वामिसौधमभिसन्धिमात्रतो
निर्विबन्धमधिरुह्य सर्वदा।
स्यां प्रसादपरमामृतासवा-
पानकेलिपरिलब्धनिर्वृतिः ॥१३॥

अर्थ :— (और) मैं अपनी इच्छा से ही (जब भी चाहूं) आप प्रभु के महल (शाक्त पद) पर बिना रोक टोक के

चढ़कर आपके अनुग्रह से समावेश-रूप अति उत्तम अमृत-मधु को पीने की क्रीडा से सदा ही आनन्द-परिपूर्ण बना रहूं।

यत्समस्तसुभगार्थवस्तुषु
स्पर्शमात्रविधिना चमत्कृतिम् ।
तां समर्पयति तेन ते वपुः
पूजयन्त्यचलभक्तिशालिनः ॥१४॥

अर्थ :— जिस पारमार्थिक युक्ति से आप चिद्रूप से अभिन्न जानकर सुन्दर प्रयोजन वाली सभी वस्तुओं में केवल स्पर्श (प्राथमिक आलोचन) से हो अलौकिक स्वात्म-चमत्कार प्राप्त होता है, उसी युक्ति से आपकी अचल भक्ति से सुशोभित भक्त-जन आपके स्वरूप की पूजा करते हैं।

स्फारयस्यखिलमात्मना स्फुरन्
विश्वमामृशसि रूपमामृशन् ।
यत्स्वयं निजरसेन घूर्णसे
तत्समुल्लसति भावमण्डलम् ॥१५॥

अर्थ :— आप अपने चिद्रूप में भासमान होते ही सारे जगत् को विकास में लाते हो (यह आपकी स्थिति-मुद्रा है) ; अपने स्वरूप का चमत्कार करते ही इसे अपनी आनन्द-घनता में लय करते हो (यह आपकी संहार मुद्रा है) और जब अपनी ही इच्छा से अपने चिदानन्द-रस में घूमने लगते हो

तभी तो यह (सारा जगत्) आनन्द से प्रकट होता है, (यह आपकी सृष्टि मुद्रा है)।

योऽविकल्पमिदमर्थमण्डलं
पश्यतीश निखिलं भवद्वपुः।
स्वात्मपक्षपरिपूरिते जगत्यस्य
नित्यसुखिनः कुतो भयम् ॥१६॥

अर्थ :— हे स्वतन्त्र प्रभो! जो भक्त इस सारे जगत् को निर्विकल्प-भाव (भैरवी अथवा शाम्भवी मुद्रा) से आप चिद्रूप का ही स्वरूप देखता है, संसार में आत्म-स्वरूप से परिपूर्ण बने हुए उस सदा सुखी (भक्त) को किस से भय हो सकता है। (अर्थात ऐसे भक्त को जन्म-मरण का भय कभी होता नहीं)।

कण्ठकोणविनिविष्टमीश ते
कालकूटमपि मे महामृतम्।
अप्युपात्तममृतं भवद्वपु-
र्भेदवृत्ति यदि रोचते न मे ॥१७॥

अर्थ :— हे स्वामी! आपके गले के कोने में पड़ा हुआ कालकूट (हालाहल) विष भी (आप से अभिन्न होने की स्थिति में) मेरे लिए बहुत बड़ा अमृत है। (परन्तु) आपके स्वरूप से भिन्न होकर यदि अमृत भी मिले तो वह मुझे रुचता नहीं।

त्वत्प्रलापमयरक्तगीतिका-
नित्ययुक्तवदनोपशोभितः ।
स्यामथापि भवदर्चनक्रिया-
प्रेयसीपरिगताशयः सदा ॥१८॥

अर्थ :— (मैं प्रार्थना करता हूं कि) मैं आप चित्स्वरूप के कथामृत से पूर्ण मधुर गीतों में सदा लगे हुए (इस प्रकार) शोभायुक्त मुखवाला और आपकी पूजा-क्रिया रूपिणी परमप्रिया के स्वरूप को पूर्ण रूप से जानने वाला सदा बना रहूं ।

ईहितं न बत पारमेश्वरं
शक्यते गणयितुं तथा च मे ।
दत्तमप्यमृतनिर्भरं वपुः
स्वं न पातुमनुमन्यते तथा ॥१९॥

अर्थ :— आश्चर्य है ! परमेश्वर की करनी समझी नहीं जा सकती क्योंकि अपने स्वरूप से भरा हुआ चिदानन्द-रस मुझे पीने के लिए देकर भी उसे मेरी इच्छा के अनुसार ही लगातार (व्युत्थान में भी) पीने देना नहीं मानते ।

त्वामगाधमविकल्पमद्वयं
स्वं स्वरूपमखिलार्थघस्मरम् ।

आविशन्नहमुमेश सर्वदा
पूजयेयमभिसंस्तुवीय च ॥२०॥

अर्थ :— हे उमापति ! आप अपार, निर्विकल्प और भेद-रहित स्वात्म-स्वरूप हैं और सभी भेद-वर्ग को निगल डालने वाले हैं। (मेरी चाह है कि) मैं आप चिद्रूप में समावेश करते हुए सदा ही आपकी पूजा करता रहूं और दिल खोलकर स्तुति (परामर्श) करता रहूं, (जो समाधि और व्युत्थान, दोनों अवस्थाओं में बना रहे)।

इति श्रीमदुत्पलदेव-विरचित संग्रहस्तोत्रम् ॥

ॐ नमः शिवाय

उत्पलदेवुन कोशुर संग्रहस्तोत्र

(कश्मीरी में पद्यानुवाद)

परिपूरण ही चित-घन निर्गुण अमरेश्वर !
जय शंकर जय शंकर, जय शंकर भय हर ।।वखनयं।।

सुख क्या छुम त दुख क्या छुम छोट वनहय् ईश्वर
तिय बोज़तम् वार पाठीय छुक् पान करुणाकर ।
सुख यि च्यय् सूत्य मिलचा़र छुम् दुख च्यय् निश दूर्यर्
जय शंकर जय शंकर, जय शंकर भय हर ।।१।।

छुम् योदवय् ज़ाव्युल ति मल यव द्रेण्ठमान छुक् न म्यय्
तत् फेष् दिम चो़वापार्य छुक् च़ शरणन हुन्द् दय् ।
नोन् बनिथ् भावुम् पनुन् रूप युस् निर्मल त निज़्वर, ज० ।।२।।

सोरुय् ज़गथ् चोनुय् रूप् च्यत-अमर्यत् अक्षय्
तथ्य मंज़ थ्यत् प्राविथ् बय न्यथ पूज़ा करहय ।
पत आस्यतन् ज़्योन या मरुण नत आस्यतन मूक्ष-वर, ज० ।।३।।

'छुस् ब ईश्वर, रूपवान् छुस्, पण्डिथा छुस् सुन्दर,
ज़गतस् मंज़ शूभवुन युथ् छा म्य हयू कांह बराबर ।'
राग चाने ज़ाग ह्यथ यहय् रागी बनान् अमर, ज० ।।४।।

ट्यलि देवादिदेव ! अज्ञान म्यति कास भास अद्वय,

प्रथ ज़ाञ मंज़ जाञरावतम् पननुय रूप अव्यय।
सन्मुख् पादिकमलन हंजि पूजायि हुन्द दिम वर, ज० ॥५॥

युथजि पानय ध्यान धारहथ पाञ पानय वुछहथ,
पाञ पानय नाल रटहथ्, बड यि पूज़ा कर न्यथ्।
चानि अनुभाव अनुभवरथ, सुय अनुग्रह म्यति कर, ज० ॥६॥

ज़गतस मंज कांह पदार्था चानि सत्तायि छुन ब्योन्
चाञ पूज़ा बोड़ उत्सव, यलि टोठान भक्त्यन्।
यिम छे दुनवय कथ शूभान तिमनय यिम गय पर्, ज० ॥७॥

चानि पूजायि हुन्दि अमर्यंत-रस मस-खास्य भर्य भर्य
सर्वभावनायि हुन्दय पूरिथ, सर्व-साक्षात् कर्य कर्य।
इन्द्रिय-मुखवय च्यय च्यय मोत रोज़हा निरन्तर, ज० ॥८॥

यति जाञ मंज ब्ययि केंहति छुन, यति च्य़य छुक् हेरि-बुन्
स्वप्रकाश-पान वुलस्योमुत छुक् च़ पानय हन् हन्
तथ्य ज़गत्-आनन्द-नगरियि मंज़ करहय आर्चर, ज० ॥९॥

दासभावाह च़यय म्य द्युतथम् परमेश्वर ! पानय
दर्शनकुय छुम अभिलाष, छम न तथ कांह आनय
तोति दिजि़हेम पादिकमलन सीव करनुक अवसर, ज० ॥१०॥

शक्तिपात विजि़ जांह ति मा प्योख् स्वरञन ही भगवन्!
अज़ क्याजि छुक खेलनावान म्यानि विज़ि अञ कतर्यन!
स्वप्रकाश पुशरावनस वेशि क्याज़ि छम यीच़ दर-दर्, ज० ॥११॥

भासवुन रूप ज़गतस मंज़, वास करवुन मनि मंज़
विषयन मंज पर-शक्ति-रूप त्र्यन ज़गतन हंज़ संज़
परिपूरण प्रकटयोमुत वुछहथ ब. मायायि पर, ज० ॥१२॥

चानि अनुग्रह यछि़ सूतिय टकि खसहा बेरोक
महलखानस चानिस मंज़, चाञ मर्ज़ी चोन ज़ोक।
परम-आनन्द अमर्यत मस नच़ आनन्द निर्भर, ज० ॥१३॥
यमि युक्तियि सारय ज़ग भासान छख चि़तरूप
स्पर्शमात्रय पर्ज़नावान, ज़ाञरावान विश्वरूप।
तमि युक्तियि पूज़ान छिय चाञ ज़न च्यय अन्दर्, ज० ॥१४॥
थ्यथ् दिवान छुक ज़गतस यलि, भासान छुख चि़तरूप
लय करान छुक ज़गतस त्यलि आसान छुक सतरूप
ग्रायि मारान आनन्दघन, उपदान छु च़राच़र, ज० ॥१५॥
युस भखत्य चोन सोरुय ज़गत पानस मंज़ डेशान
अविकल्प-भाव पानस मंज़ पाञपानय छु तोषान।
परमानन्द-घन रूज़िथ, कति तस कम्यसुन्द डर, ज० ॥१६॥
नीलकण्ठ! अखण्ड-अमर्यंत हालाहल चोन छुम
चानि अनुग्रह च्यय सूत्य यलि चित् रूप आस समि-सोम।
नत योदवय अमर्यंत मेलि, छुमन रोचा़न अख ज़र, ज० ॥१७॥
आरहति मुख नाल दिम चाञ, मायि वखनय रूप चोन
राग चाने ज़ाग ह्यथ न्यथ चि़त-आनन्द-घन म्योन।
यिछ यि पूज़ा टाठ वरिना करिना म्यति अमर, ज० ॥१८॥
चानि लीलायि परमेश्वर! ह्यकि कुस गंज़राविथ
परिपूरण रूप भाविथ क्याजि छुहम् मशराविथ।
चि़त-अमर्यंत अथि थाविथ चनसय छम छांगर, ज० ॥१९॥
च़य अपार च़य निष्कल च़य छुक च़टान भेद-भूधर
न्यंगलावान सोर संसार पाञ-पानस अन्दर।
अमिय आवेश पूज़ करहय—शंकर! शिव शंकर!
जय शंकर, जय शंकर, जय शंकर भय हर ॥२०॥

अथ देवीस्तुतिः

ॐ नमो भवान्यै

(कश्मीर के श्री धर्माचार्यकृत पञ्चस्तवी से)

ददातीष्टान्भोगान्क्षपयति रिपून्हन्ति विपदो
दहत्याधीन्व्याधीञ्छमयति सुखानी प्रतनुते ।
हठादन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं
सकृद्ध्याता देवी किमिव निरवद्यं न कुरुते ॥१॥

अर्थ :— देवी का लगातार ध्यान करने से वह चाहे हुए भोगों को देती है, शत्रुओं का नाश करती है, आपदाएं हटाती है, मन के रोगों को जलाती है, शरीर के रोगों को शान्त करती है, सुखों का विस्तार करती है, अन्तःकरण के दुःखों को अपनी इच्छा के बल से नष्ट करती है, प्यारों के वियोग को पीसती है, इस प्रकार वह कौन से दोष हैं जिनको वह दूर नहीं करती है।

अजानन्तो यान्ति क्षयमवशमन्योन्यकलहै-
रमी मायाग्रन्थौ तव परिलुठन्तः समयिनः ।

जगन्मातर्जन्मज्वरभयतमः कौमुदि ! वयं
नमस्ते कुर्वाणाः शरणमुपयामो भगवतीम् ॥२॥

अर्थ :— हे जगन्माता ! हे जन्ममरण ज्वर के भय रूपी अन्धकार को (नाश करने वाली) चान्दनी ! यह सभी भिन्न भिन्न मतवादी आपके सच्चे स्वरूप को न जानते हुए एक दूसरे के साथ झगड़े (तर्क-वितर्क) करने के कारण आपके माया रूपी फंदे में फंसते हुए लाचार होकर (जन्ममरण रूप चक्र में पडकर) नाश को प्राप्त होते हैं। हम आपकी शरण में आये हुए भक्त आप ऐश्वर्य से शोभायमान भगवती को नमस्कार (देहाभिमान को अर्पण) करते हुए शरण में आते हैं।

मनुष्यास्तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयमिदं
भवाम्भोधौमग्नं त्रिगुणलहरीकोटिलुठितम्।
कटाक्षश्चेदत्र क्वचन तव मातः ! करुणया
शरीरी सद्योऽयं व्रजति परमानन्दतनुताम् ॥३॥

अर्थ :— मनुष्य, पशु, पक्षी आदि और देवता इस प्रकार इनका यह तीन लोकों का समूह, तीन गुणों (सत्व, रज,तम) वाली करोडों लहरों से व्याकुल बना हुआ संसार सागर में डूबा हुआ है। हे मात: ! इनमें से किसी एक पर यदि आपकी दया से अनुग्रह की दृष्टि हो, तो वह जीव उसी क्षण परमानन्द-स्वरूप को प्राप्त होता है।

पिता माता भ्राता सुहृदनुचरः सद्म गृहिणी
वपुः पुत्रो मित्रं धनमपि यदा मां विजहति ।
तदा मे भिन्दाना सपदि भयमोहान्धतमसं
महाज्योत्स्ने मातर्भव करुणया सन्निधिकरी ।४।

अर्थ :— हे महाप्रकाशमयी माता ! जब (मरणकाल के समय) मुझे (मेरे) पिता, माता, भाई, सुहृद, नौकर, घर, पत्नी, शरीर, पुत्र, मित्र और धन भी छोड दें, तो उस समय दया करके मेरे भय तथा मोह के अन्धकार को नाश करती हुई जल्दी ही मेरे सामने प्रकट हो जाना (अर्थात अपने चित्स्वरूप में लीन करना)।

शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिगुणगणः ।
अविद्या त्वं विद्या त्वमसि निखिलं त्वं किमपरं
पृथक्तत्त्वं त्वत्तो भगवति ! न वीक्षामह इमे ।५।

अर्थ :— हे भगवती ! आप ही शिवरूप हो, शक्तिरूप हो, सिद्धान्तरूप हो, सिद्धान्त बनाने वाली हो, आत्मा हो, उपदेशरूप हो और यह अणिमादि सिद्धियां हो। आप ही गुणों का समूह हो, अज्ञान (माया) रूप हो, ज्ञानरूप चित्स्वरूप-भाव को प्रकट करने वाली माया-शक्ति हो और सभी कुछ आप ही हो। कौनसा तत्व आप से भिन्न है, हम इस बात को नहीं जानते हैं।

असंख्यैः प्राचीनैर्जननि जननैः कर्मविलया-
दगते जन्मन्यन्तं गुरुवपुषमासाद्य गिरिशम् ।
अवाप्याज्ञां शैवीं क्रमतनुरपि त्वां विदितवा-
न्नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैव दिवसान् ॥६॥

अर्थ :— हे माता ! (मेरी प्रार्थना है कि) मैं पिछले अनगिनत जन्मों द्वारा कर्मों के नष्ट होने से, इन जन्मों के अन्त होने पर (जीवन्मुक्त दशा में) गुरु-स्वरूप शिव को प्राप्त करके शिवरूप सिद्धान्त (चक्रेश्वरी रहस्य क्रम) पाकर अर्थात् उसका मनन और निदिध्यासन कर मनुष्य शरीर धारण करता हुआ भी आपको जानता रहूँ और आपकी पूजा करने तथा स्तुति रचने में ही इस जन्म के बाकी दिन बिता दूँ ।

(श्रीमदाद्य शंकराचार्यकृत सौन्दर्यलहरी से—)

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया ।
भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥७॥

अर्थ :— हे तीनों लोकों को शरण देने वाली (माता !) आपके सिवाय दूसरे सब देवता-गण दोनों हाथों से अभिनय कर अभयदान और वरदान देते हैं। आप ही एक ऐसी हैं जो अभयदान और वरदान देते समय हाथों से अभिनय नहीं करती। भय से रक्षा करने में और इच्छा के अनुकूल फल देने में आपके दो चरण ही निपुण हैं।

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटी परिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मंचे परमशिवपर्यङ्क निलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ।८।

अर्थ :— अमृत के समुद्र बीच, कल्पवृक्षों की वाटिका से घिरे हुए मणि द्वीप में, नीम (कदम्ब) वृक्षों के उपवन के बीच चिन्तामणियों के बने घर में, त्रिकोण मंच पर, परमशिव के पलंग पर विराजमान चिदानन्दलहरी-स्वरूप आपका कोई विरले ही मनुष्य भजन (चित्स्वरूप के साथ एक होने का चिन्तन) करते हैं; वे धन्य हैं।

भवानि ! त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-
मिति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानि त्वमिति यः।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुटनीराजितपदाम् ॥९॥

अर्थ :— हे भवानी ! 'मुझ दास पर भी आप अपनी करुणाभरी दृष्टि डाल' इस प्रकार जो मुमुक्षु स्तुति करते समय 'मैं तू हो जाऊँ' (भवानि त्वं) इस पद का ही उच्चारण कर पाता है, उसे आप अपना (वह) सायुज्यपद (ब्रह्मात्मैक्य-जीव ब्रह्म एकता) प्रदान करती हो जिसकी ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र अपने मुकुटों के प्रकाश से आरती उतारा करते हैं।

श्रीदुर्गासप्तशती से—विश्व की रक्षा के लिए प्रार्थना :—

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवी विश्वम् ।१०।

अर्थ :— पुण्यात्माओं के घरों में स्वयं ही लक्ष्मीरूप से, पापियों के यहां दरिद्रतारूप से, शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों के हृदय में बुद्धिरूप से, सत्पुरुषों में श्रद्धारूप से और कुलीन मनुष्य में लज्जारूप से निवास करती है, उस आप भगवती दुर्गा को हम नमस्कार (चिद्रूप में एकता का अनुभव) करते हैं। हे देवि ! आप सम्पूर्ण विश्व का पालन कीजिए—अपने चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान हम में प्रकट कीजिए ।

(पञ्चस्तवी से)

शब्दब्रह्ममयि स्वच्छे देवी त्रिपुरसुन्दरि !
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि ॥११॥

अर्थ :— अनाहत शब्द स्वरूपा ! (तीनों मलों से रहित) निर्मल चित्स्वरूपा ! स्वयंप्रकाशरूपा ! तीनों अवस्थाओं में व्यापक सुन्दरि ! परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति ! जैसी थोडी बहुत मेरी शक्ति है वैसे इस मेरे जप और पूजा को स्वीकार करो ।

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः।
अवस्था शाम्भवी मेऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा।१२।

अर्थ :— सभी मोक्ष चाहने वाले साधक सुखी रहें। आत्मा को दूषित बनाने वाली वृत्तियां नष्ट हों। मुझे शिवस्वरूपिणी अवस्था प्राप्त हो। मेरे गुरुदेव मुझपर सदा अनुग्रह करते रहें।

न जानामि ध्यानं तव चरणयोः प्रीतिजननं
न जानामि न्यासं मननमपि मातर्न गिरिजे !
तदेतद्क्षन्तव्यं न खलु सत्त्वरोषा समुचित
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।१३।

अर्थ :— हे गिरिजा ! आपके ज्ञान-क्रिया रूप चरणों में प्रीति (निरन्तर चिन्त रूप भक्ति) उत्पन्न करने वाली ध्यान की युक्ति मैं नहीं जानता हूँ, न न्यास (आत्मसमर्पण रूपा प्रपत्ति-विद्या) जानता हूं और न ही आपके चित्स्वरूप के मनन की युक्ति ही प्राप्त है। इसके लिए आप मुझे क्षमा करें क्योंकि आपको मुझ (भक्त) पर क्रोध करना उचित नहीं है। कुपुत्र तो पैदा हो सकता है परन्तु माता कभी भी अपने सन्तान पर उल्टा नहीं करती।

इति श्रीदेवीस्तुतिः

गौरीस्तुतिः

श्रीमदाद्य शंकराचार्यकृत

लीलारब्ध-स्थापित-लुप्ताखिललोकां
लोकातीतैर् योगिभिरन्तर्-हृदि मृग्याम् ।
बालादित्य-श्रेणि-समान-द्युति-पुंजां
गौरीं अम्बां अम्बुरुहाक्षीं अहं ईडे ॥१॥

अर्थ :— मैं कमल-नेत्र जगदम्बा पार्वती की स्तुति करता हूं जो लीला से ही सब लोकों की उत्पत्ति, स्थिति और लय करती है जिसको असाधारण बुद्धि वाले योगी अपने हृदय में खोजने के यत्न में लगे रहते हैं, और जिसका तेज अनन्त प्रभात-सूर्यों के (आह्लाद-दायक) प्रकाश के समान है ।

आशा-पाश-क्लेश-विनाशं विदधानां
पादाम्भोज-ध्यान-पराणां पुरुषाणाम् ।
ईशीं ईशार्धाङ्गहरां तां तनुमध्याम्, गौरीं० ।२।

अर्थ :— परमेश्वर की जो अर्धाङ्गिनी ईश्वरी है, जो हर एक जीव की मध्यनाडी में परम सूक्ष्मरूप से और बाहिर से विश्व में अणुरूप से रहती है और जो (अपने) चरण-

कमलों के ध्यान में लगे हुए पुरुषों की आशाओं की फांसी के कष्ट को मिटाती है, उस जगत्-माता गौरी को मैं प्रणाम करता हूं।

प्रत्याहार-ध्यान-समाधि-स्थिति-भाजां
नित्यं चित्ते निर्वृति-काष्ठां कलयन्तीम्।
सत्यज्ञानानन्दमयीं तां अभिवन्द्याम्* गौरीं० ।३।

अर्थ :— प्रत्याहार, ध्यान, समाधि (पातंजल योग दर्शन के अष्टांग-योग के अन्तरङ्ग नियमों) के पालन करने वाले मनुष्यों के चित्त में समाधि-सुख की पराकाष्टा उत्पन्न कराने वाली सत् चित्-आनन्द स्वरूप वाली और वन्दना की जाने वाली जगन्माता गौरी को मैं प्रणाम करता हूं।

चन्द्रापीडानन्दित-मन्द-स्मित-वक्त्रां
चन्द्रापीडालङ्कृत-लोलालकभाराम्।
इन्द्रोपेन्द्राभ्यर्चित-पादाम्बुज-युग्मां, गौरीं० ।४।

अर्थ :— चन्द्रमा जिसका शिरोभूषण है ऐसे भगवान् शंकर से हर्षित होकर मन्द मुसकान से भरे मुखवाली (पार्वती), जिसके केश-पाश सिर के भूषण बने चन्द्रमा से सुशोभित हैं और जिसके चरण-कमलों की जोडी की पूजा इन्द्र और भगवान् विष्णु करते हैं, उस कमल-नेत्र गौरी को मैं स्तुति करता हूं।

---

* पाठान्तर—अभिरामाम्।

नानाकारैः शक्ति-कदम्बैर्भुवनानि
व्याप्य स्वैरं क्रीडति यासौ स्वयमेव ।
कल्याणीं तां कल्पलतामानति-भाजां, गौरी० ।५।

अर्थ :— जो नाना रूप वाली अपनी अनन्त शक्तियों से सारे भुवनों में व्याप्त है और अपनी ही इच्छा से (सृष्टि, स्थिति और संहार का) खेल रचाती है, जो शरण में आये हुए भक्तजनों के लिए मङ्गल-स्वरूप है और कल्प-वृक्ष की बेल के समान उनके सब मनोरथों को सिद्ध करने वाली है उस कमल-नेत्र माता गौरी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

मूलाधारात् उत्थितवन्तीं विधिरन्ध्रं
सौरं चान्द्रं धाम विहाय ज्वलिताङ्गीम ।
ध्येयां सूक्ष्मां सूक्ष्मतनुं तां तडित् आभां, गौरी० ।६।

अर्थ :— जो कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से (अभ्यास द्वारा जगाने से) उदय करके (इडा-पिंगला अथवा प्राण-अपान रूप) सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाशों को पार करके ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) में जगमगाती है, जो बिजली की भांति सूक्ष्म से सूक्ष्मतर स्वरूपवाली है और जिसका योगी-जन ध्यान करते हैं उस कमल-नेत्र गौरी की मैं वन्दना करता हूं ।

आदिक्षान्ताम् अक्षरमूर्त्या विलसन्तीं
भूते भूते भूत-कदम्बं प्रसवित्रीम् ।

शब्दब्रह्मानन्दमयीं तां प्रणवाख्यां, गौरी० ॥७॥

अर्थ :— जो (परा शक्ति) वर्णमाला के अ से क्ष तक अक्षरों की मूर्तियों (मातृका-चक्र) से विकसित हुई है, जो आकाश, वायु आदि पंच-महाभूतों में नाना प्रकार की स्थावर-जङ्गम सृष्टि को उत्पन्न करती है और जो शब्द-ब्रह्म अर्थात् अनाहत् शब्द स्वरूपा है, जिसका वाचक ओंकार (प्रणव) है, उसी कमल-नेत्र माता गौरी की मैं वन्दना करता हूँ।

यस्याः कुक्षौ लीनम् अखण्डं जगत् अण्डं
भूयो भूयःप्रादुर्-अभूत् अक्षतम्-एव
भर्त्रा सार्धं तां स्फटिकाद्रौ विहरन्तीम, गौरीं० ।८।

अर्थ :— जिसके उदर में सारा ब्रह्माण्ड लीन हुआ और फिर-फिर सम्पूर्ण रूप से प्रकट हुआ—कल्पान्त के समय अखण्ड ब्रह्माण्ड बार बार बीज रूप से लीन होकर कल्प के आदि में ज्यों का त्यों प्रकट होता है—और जो अपने भर्त्ता भगवान शंकर के साथ अभिन्न रूप से (सूर्य-कान्त रत्न के समान) कैलास पर्वत पर (—जीव के सहस्रार में) लीला करने वाली है उस सुन्दर माता पार्वती की में स्तुति करता हूँ।

नोट :— 'विहरन्तीं' का पाठान्तर 'अभिरामां' है जिसका अर्थ है 'बहुत सुन्दर स्वरूप वाली'।

यस्याम एतत् प्रोतम् अशेषं मणिमाला
सूत्रे यद्वत् क्वापि चरं क्वाप्यचरं च ।
तां अध्यात्म-ध्यान पदव्या गमनीयां, गौरीं० ॥९॥

अर्थ :— जिस (संवित्-शक्ति) में यह सारा स्थावर-जङ्गम रूप जगत् तागे में पिरोए हुए मणियों की माला के समान ठहरा हुआ है और जिसका साक्षात्कार आत्म-ज्ञान द्वारा ही होता है उसी सुन्दर-स्वरूप माता गौरी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

नित्यः सत्यो निष्कल एको जगत् ईशः
साक्षी यस्याः सर्ग-विधौ संहरणे च ।
विश्वत्राण-क्रीडन-शीलां शिव-पत्नीं, गौरीं० ।१०।

अर्थ :— जिस (लीलामयी मां) की सृष्टि रचने की विधि तथा संहार करने की क्रिया का देखने वाला (साक्षी), अवयव-रहित, सत्य-स्वरूप और नित्य-वस्तु केवल परमेश्वर ही है और जो अपनी इस क्रीडा में जगत् पर उपकार करने की स्वभाव वाली, भगवान् शिव की अर्धाङ्गिनी (स्वतन्त्र-शक्ति) है उस सुन्दरता-स्वरूपा माता पार्वती को मैं प्रणाम करता हूं ।

प्रातः काले भावविशुद्धः प्रणिधानात्
भक्त्या नित्यं जल्पति गौरीदशकं यः।
वाचां सिद्धिं सम्पदम् उच्चैः शिव भक्तिं
तस्यावश्यं पर्वत पुत्री विदधाति, गौरीं० ॥११॥

अर्थ :— जो भक्त-जन प्रतिदिन प्रात:काल के समय शुद्ध अन्त:करण हो भक्ति से और शरणागति से गौरीस्तुति: के दस श्लोकों का पाठ (अर्थ-चिन्तन से) करता है उसको माता पार्वती अवश्य ही वाक्-सिद्धि, संपदा और परमशिव की उत्तम भक्ति प्रदान करती है।

इति गौरीस्तुति:

अथ जयस्तुतिः

जय नारायण ! जय पुरुषोत्तम !
जय वामन ! कंसारे !
उद्धर मामऽसुरेशविनाशिन् ! पतितोऽहं संसारे!
घोरं हर मम नरकरिपो ! केशव ! कल्मषभारं
मामऽनुकम्पय दीनमऽनाथं कुरु भवसागरपारम् ।१।

अर्थ :— हे नारायण ! हे पुरुषोतम ! हे वामन का अवतार धारण करने वाले भगवान् विष्णु ! हे कंस का नाश करने वाले भगवान् कृष्ण ! हे राक्षसों के स्वामी का नाश करने वाले भगवान् ! मैं संसार रूपी समुद्र में डूबा हुआ हूं (इस संसार-समुद्र से) मुझे उबार लो ! हे नरक से छुटकारा दिलाने वाले भगवान् ! हे केशव ! मेरे पापों के बडे बोझ को दूर करो। मुझ (संसार भय से) दीन और अनाथ पर दया करके मुझे इस संसार-सागर के पार उतारो।

जय जय देव ! जयाऽसुरसूदन !
जय केशव ! जय विष्णो !
जय लक्ष्मीमुखकमलमधुव्रत !
जय दशकन्दर जिष्णो ।२।

अर्थ :— हे स्वयं प्रकाश देव ! असुरों का नाश करने वाले ! केशव ! सर्वव्यापक ! लक्ष्मी के मुख-कमलरूप मिठास को वर्णन करने वाले अर्थात् लक्ष्मीपति ! हे रावण को जीतने वाले राम ! आपको बारम्बार जयकार हो।

त्वंजननी जनकः प्रभुरच्युत ! त्वं पुत्रसुहृद्धनमित्रम्
त्वं शरणं शरणागतवत्सल ! त्वं भवजलधिवहित्रम् ३

अर्थ :— अपने स्वरूप से विचलित न होने वाले भगवान् अच्युत ! तुम (ही मेरे) माता, पिता और स्वामी हो। तुम ही मेरे (सच्चे) पुत्र, सुहृत् और मित्र हो। हे शरण में आये हुए (भक्तों के) प्यारे भगवान् ! तुम ही रक्षा करने वाले हो। तुम ही संसार-समुद्र से पार उतारने वाले हो।

पुनरऽपि जननं पुनरऽपि मरणं पुनरऽपि गर्भनिवासं।
सोढुमऽलं पुनरऽस्मिन्माधव ! मामुद्धर निजदासम।४।

अर्थ :— हे लक्ष्मीपति (माधव) ! इस (संसार) में मैंने बार-बार जन्म लेने, बार-बार मरने और बार-बार गर्भ में रहने (का कष्ट), इस प्रकार सब दुःख अब सह लिए। (अब इन कष्टों को सहन नहीं कर सकता हूँ, अतः) मुझ अपने दास का उद्धार करो।

जनक सुतापति चरणपरायण, शंकरमुनिवरगीतं।
धारय मनसि कृष्ण! पुरुषोत्तम! वारय संसृतिभीतिम्

अर्थ :— हे कृष्ण ! हे पुरुषोतम् ! भगवान राम के चरणों में शरण आये हुए शंकर मुनि की गाई हुई (यह) उत्तम स्तुति मन में धारण करो (अर्थात् इस स्तुति की ओर ध्यान दो) और वह संसार भय (मुझ से) दूर करो।

यद्यपि सकलमऽहं कलयामि हरे !
नहि किमऽपि ससत्वं ।
तदऽपि न मुञ्चति मामिदमऽच्युत !
पुत्रकलत्रममत्वम् ।६।

अर्थ :— हे हरि ! यद्यपि यह सब (मेरी स्तुति) मधुर और अस्पष्ट, इसमें दृढ़ता नहीं है, तो भी हे अच्युत ! स्त्री-पुत्रादि में मेरी ममता मुझे नहीं छोड़ती ! अर्थात् हे भगवान् ! यद्यपि मेरी यह स्तुति मधुर है और अस्पष्ट होने के कारण ममता-मोह नहीं छूटता, तथापि आत्म-भाव के दृढ़ होने पर यह मोह मुझे छूट जायेगा। यह मेरी पूर्ण धारणा है।

इति शंकरभगवताकृता जयस्तुति:

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकारा: ।
संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता
वैराग्यमस्ति किमत: परमर्थनीयम् ॥

(भर्तृहरि:)

अर्थ :— सदाशिव की भक्ति हो, जन्ममरण का भय हृदय में हो, बन्धुवर्ग में आसक्ति न हो (जिस से भगवत्स्मरण में बाधा पडे), कामदेव का विकार मन से दूर हो, संगदोष से छूटे निर्जन वन (अर्थात् निर्मल चित्त से भगवत्स्मरण) में बैठे हों, इस से अधिक और क्या वैराग्य है जो ईश्वर से मांगने योग्य है अर्थात् यही वैराग्य है।

शिवस्तुतिः

श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यकृता
(भैरवस्तुतिः)

व्याप्तचराचरभावविशेषं
चिन्मयमेकमनन्तमनादिम् ।
भैरवनाथमनाथशरण्यं
तन्मयचित्ततया हृदि वन्दे ॥१॥

अर्थ :— अनाथों के रक्षक भैरवनाथ (शिव) जो चर और अचर में विशेष भाव से व्यापक चित्स्वरूप, अद्वितीय, नाश रहित तथा आदि-रहित है, उसके स्वरूप के साथ मन से एकाग्र होकर मैं वन्दना करता हूं।

त्वन्मयमेतदशेषमिदानीं
भाति मम त्वदनुग्रहशक्त्या ।
त्वं च महेश ! सदैव ममात्मा
स्वात्ममयं मम तेन समस्तम् ॥२॥

अर्थ :— (हे भैरव !) आपकी अनुग्रह-शक्ति के फलस्वरूप मुझे यह सारा जगत् इस समय आपके स्वरूप से अभिन्न दीख पड़ता है। हे महेश ! आप प्रभु सदा (अर्थात् तीनों अवस्थाओं में) मेरे ही आत्मा हो। अतः यह सारा संसार मुझे स्वात्ममय (अपना स्वरूप) दिखाई देता है।

स्वात्मनि विश्वगते त्वयि नाथे
तेन न संसृतिभीतिः कथाऽस्ति।
सत्स्वपि दुर्धरदुःखविमोह
त्रासविधायिषु कर्मगणेषु ॥३॥

अर्थ :— भय देने वाले प्रारब्धादि कर्म मुझे कठोर दुःख देते हैं और मोह में ड़ालते हैं। ऐसा होने पर भी (मैं) आप स्वामी के व्यापक विश्वरूप के साथ एकता का अनुभव करता हूं। इसलिए (मेरे लिए) संसार के (इस) भय की कोई वार्ता नहीं।

अन्तक ! मां प्रति मा दृशमेतां
क्रोधकरालतमां विदधीहि।
शङ्करसेवनचिन्तनधीरो
भीषणभैरव शक्तिमयोऽस्मि ॥४॥

अर्थ :— हे महाकाल ! मेरे ऊपर भयानक क्रोध से ऐसी अत्यन्त विकराल दृष्टि न डाल, क्योंकि भगवान् शंकर

(भैरव) की सेवा (पूजा) तथा चिन्तन (ध्यान) करने से मैं धैर्यवान् बना हूं। (अतः तुम्हें) भय देने वाली भैरव-शक्ति से मैं सम्पन्न हूँ।

इत्थमुपोडभवन्मय संविद्-
दीधितिदारित भूरितमिस्रः।
मृत्युयमान्तक कर्मपिशाचै-
र्नाथ नमोऽस्तु न जातु बिभेमि ॥५॥

अर्थ :— हे नाथ! इस प्रकार आपकी ज्ञानशक्ति (संवित्) उपवाहित (बिल्कुल अपने समीप) है। उस से फाड़ा हुआ यह (अज्ञान-रूप) घना अन्धकार नष्ट हो जाता है। (अतः) मैं पिशाच-कर्म (कपट) से भरे (आपके ही तीन रूप) मृत्यु, यम (मृत्यु-प्राप्ति) और अन्तक (महाकाल) से थोड़ा भी नहीं डरता। (हे जगदीश) आपको नमस्कार हो।

प्रोदितसत्यविबोधमरीचि
प्रोक्षितविश्वपदार्थसतत्त्वः।
भावपरामृतनिर्भरपूर्णे
त्वय्यऽहमात्मनि निर्वृतिमेमि ॥६॥

अर्थ :— इस प्रकार आपके उदयशील सत्यस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप किरणों से समस्त संसार के सारे पदार्थों का सिंचन होता है, जिससे आपके अहंस्वरूपभाव रूपी परम अमृत से परिपूर्ण (आप) भैरवनाथ में मेरी आत्मा एकरूप हुई है। (अतः) मुझे शान्ति मिली है।

मानसगोचरमेति यदैव
क्लेशदशाऽतनुतापविधात्री ।
नाथ ! तदैव ममत्वदभेद-
स्तोत्रपराऽमृतवृष्टिरुदेति ।७।

अर्थ :— हे स्वामी ! जिस क्षण संसार के भारी सन्ताप (त्रिविध-ताप :- १. आध्यात्मिक—इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न हुआ मानसिक दु:ख २. आदिभौतिक—चोर, शेर, शत्रु आदि भूत-समुदाय से होने वाले दु:ख; और ३. आदिदैविक—भूँचाल, बाढ़ आदि दैवी दु:ख) मेरे मन में मुझे स्पर्श करने आते हैं, उसी क्षण मेरे में आप अभद परमात्मतत्त्वरूपी वर्षा का उदय होता है जो इन सब सन्तापों को नष्ट कर देती है ।

शंकर ! सत्यमिदं व्रतदान-
स्नानतपो भवतापविनाशि ।
तावकशास्त्रपराऽमृतचिन्ता
स्यन्दति चेतसि निर्वृतिधारा ।८।

अर्थ :— हे शंकर ! यह सत्य है कि व्रत रखने से, दान देने से, स्नान करने से तथा तपस्या करने से संसार के दु:ख नष्ट हो जाते हैं। परन्तु आपके अद्वैत शास्त्रों के चिन्तन (श्रवन, मनन और निधिध्यासन) करने से संसार में आनन्द की धारा बहती है ।

नृत्यति गायति हृष्यति गाढं
संविदियं मम भैरवनाथ !
त्वां प्रियमाप्य सुदर्शनमेकं
दुर्लभमन्यजनैः समयज्ञम् ।९।

अर्थ :— हे भैरवनाथ ! आप प्यारे और सुन्दर दर्शन वाले अद्वितीय-स्वरूप को (जो अनुपम है) पाकर मेरी यह ज्ञान-शक्ति (संवित्) अधिक रूप में प्रसन्न होती है। (परन्तु) अभक्तों के लिए (यह अवस्था) दुर्लभ है।

वसुरसपौषे कृष्णदशम्या-
मभिनवगुप्तः स्तवमिदमकरोत् ।
येन विभुर्भवमरुसन्तापं
शमयति झटिति जनस्य दयालुः ।१०।

अर्थ :— वसु (आठ), रस (छः), पौष (नौ) मास के कृष्णपक्ष की दशमी (अर्थात् संवत् ९६८) को महेश्वराचार्य अभिनव गुप्त ने यह स्तुतिः रची, जिसके विमर्श से भगवान् शंकर (भैरव) मरुस्थल रूपी सन्ताप (तीनों प्रकार के दुःख) क्षणमात्र में नष्ट कर देते हैं।

इति श्री अभिनवगुप्ताचार्यकृता शिवस्तुतिः ॥

अथ चामरार्थं शिवस्तुतिः

अतिभीषणकटुभाषणयमकिङ्करपटली
कृतताडनपरिपीडन मरणागमसमये ।
उमया सह मम चेतसि यमशासन निवसन्
शिवशंकर शिवशंकर हर मे हर दुरितम् ।१।

अर्थ :— हे यमराज पर शासन करने वाले और कल्याणकर शिव ! मरणकाल आने के समय जब यमकिंकरों का समूह बहुत भयानक और कठोर भाषणों से ताडन करते हुए मुझे पीड़ा देते हों उस समय भगवती उमा के साथ मेरे मन में निवास करते हुए मेरे पापों का नाश कर दो ।

अतिदुर्नयचटुलेन्द्रिय रिपुसञ्चयदलिते
पविकर्कशकटुजल्पितखलगर्हणचलिते ।
शिवया सह मम चेतसि शशिशेखर निवसन्
शिवशंकर शिवशंकर हर मे हर दुरितम् ।२।

अर्थ :— हे सिर पर चन्द्रमा धारण करने वाले शिव ! बहुत ही बुरी तरह ढीले बने हुए इन्द्रियों को विषयरूपी

शत्रुओं से दबाये जाने पर, कठोर वज्र, कठिन बातों से तथा दुष्टों की निन्दा से चंचल (दुःखी) होने पर, भवानी शिवा के साथ मेरे मन में निवास करते हुए मेरे पापों का नाश कर दो।

भवभञ्जन सुररञ्जन खलवञ्चन पुरहन्
दनुजान्तक मदनान्तक रविजान्तक भगवन् ।
गिरिजावर करुणाकर परमेश्वर भयहन्
शिवशंकर शिवशंकर हरमे हर दुरितम् ॥३॥

अर्थ :— हे भगवन् ! संसार-भय को हटाने वाले ! देवताओं को प्रसन्नता देने वाले ! दुष्टों को भगाने वाले, पुर राक्षस को मारने वाले ! दनुज, कामदेव और रविज के महाकाल ! पार्वति-पति ! विघ्नभय दूर करने वाले दयाशील परमेश्वर ! कल्याण-स्वरूप शिव ! मेरे पापों को दूर कर दे।

शक्रशासन कृतशासन चतुराश्रमविषये
कलिविग्रहभवदुर्ग्रहरिपुदुर्बलसमये ।
द्विजक्षत्रियवनिताशिशु दरकम्पित हृदये
शिवशंकर शिवशंकर हरमे हर दुरितम् ॥४॥

अर्थ :— इन्द्र पर शासन करने वाले ! सत्ययुग के शासक ! चार आश्रमों में कलियुग के झगड़ों, संसार के उल्टे ग्रहों और शत्रुओं के कारण दुर्बलता के समय जब जब

ब्राह्मण, क्षत्रिय, स्त्री, पुत्र के भय से हृदय कांप रहा हो, हे कल्याण करने वाले शिव! उस समय मेरे पापों का नाश कर दो।

भवसम्भवविविधामयपरिपीडितवपुषं
दयितात्मजममताभरकलुषीकृतहृदयम्।
कुरु मां निजचरणार्चितनिरतं भव सततं
शिवशंकर शिवशंकर हरमे हर दुरितम् ।।५।।

अर्थ :— हे भव! (संसार को रचने वाले भगवन्) संसार से पैदा हुए नाना प्रकार की पीड़ाओं से पीडित शरीर वाले, तथा अभीष्ठ संतान की अधिक ममता से कलुषित हुए हृदय वाले मुझको सदा अपने चरणों की पूजा में ही निरन्तर लगा दो। हे कल्याणमय शिव! मेरे दुष्कृत को दूर कर दो।

इति चामरार्थं शिवस्तुतिः ।।

इति शम्

अद्भुत दीप

हृद्गुहागहनगेहगूहितं भासिताखिल-
जगत्त्रयोदरम् ।
कन्दकन्दरदरीमुखोद्गतप्राणमारुत-
कृतस्थिरस्थितिम् ॥
त्यक्तसर्वदशमक्षयोदयं रूपवर्जितमभित्तिसंश्रयम् ।
यं निरञ्जनमनक्षगोचरं दीपमद्भुतमुशन्ति
तं स्तुमः ॥

अर्थ :— (ज्ञानी लोग) जिस परमात्मा को हृदयरूपी गुहा (चिदाकाश) के अतिगहन मन्दिर में गुप्त रहते हुए भी, तीनों भुवनों (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) को (स्वस्वरूप में ही) प्रकाशित करने वाला, मेढ़् से ऊपर और नाभि से नीचे (दो अंगुल स्थान के) मध्य में गुहा (कुण्डलिनी) के (समाधिकाल में सुषुम्ना नाडी रूप) मुंह द्वारा ऊर्ध्वगत प्राणवायु से (लौकिक दीप की तरह बुझने के बदले) सुस्थिर स्थितिवाला, बत्तियों (बाल्यकालादि अवस्थाओं) से रहित, (केवल अनुभवगम्य होने के कारण) रूप से रहित; (हृदाकाश में तत्त्वातीत चिन्मयस्वरूप होने से) आधार रहित, काजल (माया-अंजन) से रहित, (परप्रमाता होने से इन्द्रिय-अगोचर, अत:) बाह्य नेत्रों से न दिखनेवाला एक अद्भुत-आश्चर्यमय दीपक डिण्डोरा देकर बतलाते हैं (और अनुभव करना चाहते हैं) उस परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं।

—काश्मीरक महाकवि जगद्धर भट्टः

परिशिष्ट-ख

पण्डित् शिव कौल कृता

आक्रन्दमानगिरया शिवस्तुतिः

(रोती हुई वाणी में भक्ति-भाव से भगवान शिव की आराधना)

रे चित्त ! भीत ! चपल ! विपुलां विहाय
चिन्तां, समाश्रय पदद्वयमार्तबन्धोः ।
आक्रन्दमानगिरया परया च भक्त्या
जन्मादिदुःखशमनमभिप्रार्थयस्व ।१।

आर्त भक्त अपने चंचल चित्त (मन) को कहता है:—

अर्थ :— संसार भय से पीडित और चंचल बने हुए हे मेरे मन ! तू सारी चिन्ता (संसार-बन्धन में डालने वाली वासनाएं) छोड दो। आर्त भक्तों के (एकमात्र) बन्धु (भगवान् शिव) के चरणद्वय की शरण लो। परम भक्ति और रोती हुई वाणी में (उससे) जन्म मरण आदि दुःख* शान्त करने के लिए प्रार्थना कर।

---

*जन्म-मरण, शोक-मोह और क्षुत्-पिपासा—ये जीवभाव की छः ऊर्मियां (धर्म) हैं। शिव इन ऊर्मियों से रहित है।

किं त्वं मुधा कथय संसरणाख्यघोरां-
गारेषु कातरतयाऽभिपचन् स्थितोऽसि ?
दैन्यं विहाय भवदुःखविमुक्तये त्वं
आराधनां कुरु शिवस्य, तथाऽत्र वक्ष्ये ॥२॥

अर्थ :— ज़रा कहो, क्यों तू व्यर्थ ही संसार-चक्र नाम के बलते अंगारों में डरपोक बनकर सन्तप्त हुआ ठहरा है ? इस दीनता (असहाय-भाव) को छोडकर संसार दुःख से मुक्त होने के लिए भगवान् शिव की आराधना में लग जाओ। (आराधना किस प्रकार करोगे—) वह मैं यहां कह देता हूँ।

आराधना का प्रकार

हा किं न पश्यसि दृढैरपि पाशजालै-
र्मां हन्तुमिच्छति पशुमिव कालव्याधः।
कालान्तकारक ! महेश्वर ! क्वासि, क्वासि ?
भीतं न पालयसि किं ? जगतां निवासिन् ।३।

अर्थ :— महाकाल का अन्त करने वाले भगवान् शिव ! हाय, क्या नहीं देखते हो कि महाकाल अपने दृढ़ पाश-जाल लेकर मुझे ऐसे ही मार डालने की इच्छा करता है जैसे एक शिकारी वन्य पशु को (मारने के लिए पीछे दौडता है) ? हे महेश्वर ! तुम कहां हो, कहां हो ! हे तीनों जगत में

वास करने वाले (परमेश्वर)! (इस) भय से पीडित मुझ (अपने भक्त) की रक्षा क्यों नहीं करते हो?

आः किं न उद्धरसि नाथ निमज्जमानं
मोहार्णवेऽतिगहने भवभारक्षिण्णम् ?
मा पश्य मत्कुकृतिमप्यतिगर्हितां च
वीक्षस्व स्वां महदनुग्रहशक्तिमेव ॥४॥

अर्थ :— हे स्वामी! हाय, संसार-भार से परेशान (और) बहुत गहरे मोह समुद्र में डूबते हुए मुझ (ऐसे भक्त) का उद्धार क्यों नहीं करते हो? बहुत निन्दा के योग्य भी मेरे कुकृत्यों की ओर मत देख। अपनी महान अनुग्रह शक्ति की ओर ही (तो) ध्यान दो।

कष्टं करालदशनो ह्यपि कालव्यालो
दष्टुं महत्तरजवेन प्रधावति माम् ।
नष्टुं किमस्य तव शक्तिरपोहितैव
येनातुरं हि उरगाय ह्युपेक्षसे माम् ॥५॥

अर्थ :— हाय कष्ट है, विकराल दान्त निकालकर कालरूपी सांप मुझे डसने को बडी तेज़ी से दौड रहा है। इसका नाश करने के लिए आपकी शक्ति मानो छिप गई (मन्द पडी) है। जान पडता है कि सांप (को सुरक्षित रखने) के

लिए मेरी ओर ध्यान नहीं देते (क्योंकि साँप आपके अंगों से लिपटे रहने के कारण आपको प्यारे हैं न)।

दग्धुं कुकर्मपवनेन च दीप्यमान:
कालानलोऽयमभितो ह्यचिरात्प्रयाति।
भस्मीकरोत्यहह मां झटिति पिनाकिन्!
शान्ति नयस्व सुकृपामृतवर्षणेन ॥६॥

अर्थ :— मेरे कुकर्म रूप वायु से जाज्वल्यमान यह महाकाल रूप अग्नि (मेरे) चारों तरफ तेज़ी से फैल रही है। हाय, हाय! यह मुझे शीघ्र ही भस्म कर डालेगी। हे पिनाकधारी शिव! अपने सत्कृपारूपी अमृत वर्षन से इस (कालरूप अग्नि) को शान्त कर

रुग्न: लुठाम्यवनि भग्नकटीव सर्प:
कंदर्पदर्पहर! मे हरसि न दु:खम्।
को वा पर: त्वदपर: वरणार्हब्रूहि
यं त्वां विहाय कृपण: शरणं गमिष्ये ॥७॥

अर्थ :— हे कामदेव के दर्प को हरण करने वाले शिव! मैं टूटी हुई कमर वाले सांप की तरह रोग-ग्रस्त होकर पृथ्वी पर लुडकते जा रहा हूँ आप मेरा दु:ख दूर नहीं करते। आप ही बताइए कि आप से उत्कृष्ट और कौन है जो बेरोक

(अनर्गल) अनुग्रह करने में समर्थ है जिसकी शरण में, आपको छोडकर, मेरा जैसा कृपण* जा सकता है।

आर्तोऽस्म्यहं हि विलपामि त्वदङ्घ्रिलग्नः
त्वं तु सुविस्मृतिप्रदौषधिपानमग्नः।
एतत् चरित्रमुभयोरवलोकमानाः
त्वां शीघ्रतोषित! कथं जगति स्तुवन्ति ॥८॥

अर्थ :— मैं तो आर्त हूँ और आपके चरणों की शरण लेकर विलाप कर रहा हूँ, परन्तु आप भुला देने वाली औषधि को पीते मग्न (दिखाई देते) हैं (जो मेरे इस आर्त नाद की ओर कोई ध्यान नहीं देते हो)। हे शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले शिव! (हम दोनों का) यह चरित्र देखते हुए (लोग) कैसे आपकी स्तुति करते ही हैं।

शक्नोसि त्वं यदि न संसृतिदुःखमेतत्
हर्तुं समर्थयसि नार्थिनमुत्तरञ्च।
नार्हामि चेत् तवकृपालवलेशमीश
शीघ्रं बहिष्कुरु तथापि प्रपंचकोशात् ॥९॥

---

*कृपण (कश्मीरी में क्रिपिन्न) उसे कहते हैं जो उस अक्षर परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने के बिना ही शरीर त्याग करता है :— 'यो वा एतदक्षरमविदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः' ऋषि याग्यवल्क्य बृहदारण्यकोपनिषद में गार्गि के प्रति ऐसा कहते हैं।

अर्थ :— हे ईश्वर ! यदि आप मेरा यह संसार में आवागमन का दुःख दूर नहीं कर सकते और यदि (मुझ) प्रार्थना करने वाले (आर्त भक्त) को उत्तर देने में भी समर्थ नहीं हो, (इस प्रकार) यदि मैं आपकी कृपा का लेश-मात्र भी प्राप्त करने के योग्य नहीं हूँ, तो फिर जल्दी ही मुझे इस संसार रूप कोश (कोठडी) से बाहर कर दो (व्यंग्य में कहा है कि मुक्ति का भाजन बनाओ)।

याचे न वैश्रवणकोशसमाधिकारं
नो वाऽमरेन्द्रसमतां न दिवि विहारम् ।
भोगेच्छयापि भगवन् ! न च सार्वभौमं
यच्चिन्तया तव मनः ननु खेदमायात् ।१०।

अर्थ :— हे भगवन् ! मैं कुबेर के समान धनपति बनने का अधिकार आप से नहीं मांगता हूँ, न राजा इन्द्र के साथ समता और न स्वर्ग-लोक में रहने की मांग करता हूँ। मैं भोगों की इच्छा से भी सब से बडकर नहीं बनना चाहता हूँ, जिन (मांगों) की चिन्ता से आपके मन में खेद (कष्ट) हो !

दीनोऽस्मि कर्मगतिना सरणौ निक्षिप्तः
जन्मजरामरणव्याधिशतैश्चतप्तः ।
त्वामर्थयामि गिरिजावर ! एतदेव
मामुद्धराशु कृपया ननु कोऽत्र खेदः ।११।

अर्थ :— मैं अपनी कर्म-गति से दीन-हीन होकर इस संसारचक्र में पडा हूँ जिसके फलस्वरूप मैं जन्म-जरा-मरण और सैंकडों व्याधियों से संतप्त हूँ। हे गिरिजावर ! (पार्वती पति) मैं (इस अवस्था में) आप से केवल यही मांगता हूँ कि कृपा करके मेरा (इस दुःखमय संसार से) जल्दी उद्धार करो। इसमें (आपको) खेद ही क्या है।

त्वं चेन्न उद्धरसि मां हरसि न तापं
पापस्य स्वस्य फलमेव तु तद्विजाने।
किंच जनास्तवगुणानुस्मृणे वदेरन्
नैवार्तत्राणकुशलो जटिलो कपाली ॥१२॥

अर्थ :— **यदि** आप मेरा उद्धार नहीं करते और (इस तरह) मेरे संताप को दूर नहीं करते तो मैं यह जानता ही हूँ कि यह मेरे अपने पाप का फल है ! किन्तु आपके भक्तजन आपके गुणों का अनुस्मृन (चर्चा) करते समय कहेंगे ही कि यह जटाधारी शिव जो हाथ में कपाल लेकर स्वयं भिक्षा के लिए घूमता रहता है, आर्त भक्तों की (अनुग्रह द्वारा) रक्षा करने में कुशल नहीं हैं।

यच्च त्वया त्रिपुरधानवध्वंसकाले
यच्चान्तकान्तकरणे दहने स्मरस्य।
दिव्यं बलमतुलमीश ! प्रदर्शितं तत्
दीनस्य त्राणकरणावसरे क्व यातम् ॥१३॥

अर्थ :— हे ईश्वर ! जो दिव्य (आलौकिक) और अतुल (जिसको कोई बराबरी न हो ऐसा) बल आपने (क) त्रिपुरधानव को नाश करते समय दिखाया (ख) महाकाल का भी अन्त करने के समय दिखाया, और (ग) कामदेव को दग्ध करने के अवसर पर दिखाया, वह (अनुपम बल) मुझ शरण में आये हुए भक्त के समय कहां चला गया ? (अर्थात् सर्वसमर्थ होकर मेरे समय क्यों असमर्थ जैसे अपने आपको बता रहे हो ?) ।

त्वं निर्बलोस्यप्यथवा बलवत्तरोऽसि
कर्त्तुं कृपां त्वमक्षमोस्यथवा क्षमोऽसि ।
स्वामिन् ! ममासि भवदङ्घ्रियुगं कथञ्चित्
प्राप्तोऽस्मि नाथ ! शरणं न तु तं विमुञ्चे ॥१४॥

अर्थ :— आप निर्बल हो अथवा आप बहुत बलवान हो, आप कृपा (अनुग्रह) करने में असमर्थ हो अथवा आप (किसी किसी पर) कृपा करने में समर्थ हो (—इन बातों से मेरा कोई अभिप्राय नहीं है। परन्तु) हे स्वामी ! आप मेरे हो। हे नाथ ! मैंने तो आपके चरणों की जोडी की शरण (किसी पूर्व पुण्य-पुञ्ज के परिपाक से और सत्गुरु के कृपा कटाक्ष से) ली है। मैं तो अब उस (शरण अर्थात् 'पकड') को नहीं छोडूँगा ।

स्वामिन् ! विनापि विनयेन यदि त्वदग्रे
तीक्ष्णैः पदैः प्रकटयामि च स्वाभिसंधिम् ।

लज्जोज्झितत्वमपि तत् भगवन् ! क्षमोऽसि
सोढुं भवान् पितुरिवार्भकदुर्वचांसि ॥१५॥

अर्थ :— हे स्वामी ! यदि आपके सामने बडी तेज़ वाणी में मैं अविनय से ही (आपके साथ) अपना मेल (सत्तासामान्य भाव से एकता) प्रकट करता हूं और वह भी लज्जा (शिष्टाचरण) को त्याग कर, तो भगवन् ! वह आप ही सहन करने में समर्थ हो जैसे (लोकव्यवहार में) पिता ही अपने बालक के (अविनय से) कहे दुर्वचनों को सहन कर सकता है।

आक्रन्दनस्तुतिरियं शिवसन्निधाने
भक्त्या तु दीनमनसा पठति पुमान् यः ।
तस्य नगेन्द्रतनुजापतिराशुतोषः
दुर्वार दुःखशमनं दयया करोति ॥१६॥

इति पण्डित शिवकौल कृता आक्रन्दनस्तुतिः ।

इस स्तुति का फल यह है कि जो भी साधारण पुरुष इस आक्रन्दनस्तुति को बडी भक्ति और विनम्र भाव से भगवान् शिव के सन्निधान पूजा-स्तुति* के रूप में पढता है उस पर पार्वती-पति आशुतोष भगवान् शिव अपनी (अहैतुकी) दया से (कठोर संसार भय से पैदा हुआ) दुःख शान्त करता है अर्थात शिव उस भक्त को मुक्ति का भाजन बनाता है।

---

*पूजा-स्तुति में भगवान् का चिन्तन (ध्यान) करना आवश्यक है। पूजादि कर्म सफल होते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने कहा है—'तज्जपस्तदर्थभावना'—भगवान के नाम (ॐ) का जप उस (मन्त्र) के अर्थ को जानते हुए करने से सिद्धि मिलती है।

पण्डित शिवकौल

यह सुन्दर तथा भावपूर्ण शिवस्तुति मेरे पूज्य पितामह पण्डित शिवकौल की कृति है। भगवान लक्ष्मण जू ने इसे 'अलौकिक स्तुति' कह कर सराहा है। पं० शिवकौल का वैकुण्ठवास पचास वर्ष से कुछ कम आयु में, जून १९२२ ई० में हुआ था। इस तरह उनका जन्म १८७२ ई० के आस पास हुआ होगा। उनके गुरु महाराज हरिद्वार पातञ्जलाश्रम के स्वामि तेजनाथ थे। अपने गृहस्थ का यथायोग्य निर्वाह करते हुए उन्हें मूर्तिकला तथा चित्रकला में भी रुचि थी। योगचर्या, सत्संग तथा वेदान्त श्रवण की ओर अधिक आक्रष्ट थे। श्रीनगर के प्रसिद्ध विद्वद्वर्य पं० सुनकाक राज़दान से वेदान्त शास्त्रों का अध्ययन किया था। इन बातों का मुझे युवा होने पर अपनी दादी जी स्वर्गीया अमरावती से पता चला था। शिवस्तुति और माण्डूक्योपनिषद् गौडपाद कारिकाओं का कश्मीरी भाषा में पद्यानुवाद, इन की पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं। —सम्पादक

अथ ब्राह्मोविद्या

ॐ ॐ ॐ त्रिगुणपुरुष क्षेत्रचर मोहं भिन्धि, रजस्तमसी भिन्धि, प्राकृतपाशजालं सावरणं परिहर, सत्त्वं गृहाण, पुरुशोत्तमोऽसि, सोमसूर्यानलप्रवरपरमधामन्, ब्रह्मविष्णुमहेश्वरस्वरूप, सृष्टिस्थितिसंहारकारक, भ्रूमध्यनिलय, तेजोऽसि धामासि अमृतात्मन् ॐ तत्सत्। हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा ऋतं परंब्रह्मस्वरूप सर्वगत सर्वशक्ते सर्वेश्वर सर्वेन्द्रियग्रन्थिभेदं कुरु कुरु परमं पदं परामर्शय परमार्गं ब्रह्मद्वारं सर, कुमार्गं जहि, षाट्‌नोशिकं शरीरं त्यज, शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि विमलोऽसि, क्षमस्व स्वपदमास्वादयाऽस्वादय स्वाहा। इति॥

ब्राह्मीविद्या

माता-पिता अपनी सन्तान के गुरु होते हैं। सुशील तथा विज्ञ माता-पिता अपनी सन्तान को बचपन से ब्राह्मीविद्या कण्ठस्थ कराते हैं। 'अत्मा वै पुत्रो जायते' (उप०)- पुत्र माता पिता का ही दूसरा नया रूप होता है। वह अपने माता पिता को अन्तिम समय पर चेतना देता है कि जो ज्ञान आपने मुझे बचपन से दिया है ऐसा न हो कि इस अन्तिम घड़ी पर आप उसको भूल जाएं। ऋषियों ने वेदों से चयन करके वही चेतना ब्राह्मीविद्या के रूप में बताई है। विज्ञजनों से प्रार्थना है कि वे इस ब्राह्मीविद्या का शुद्ध भक्ति तथा विचारपूर्वक नित्य पाठ करें :-

ॐ ॐ ॐ — ओम् का तीन बार उच्चारण करने से संसार के तीन दुःखों आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—का निवारण होता है।

त्रिगुणपुरुष ! — हे तीन गुणों (सत्व, रज, तम) में ठहरने वाले पुरुष ! (और)

क्षेत्रचर ! — शरीर रूप क्षेत्र में फिरने वाले (जीव) !

मोहं — माया के प्रभाव से जो तुम्हें यह मोह

	(अतस्मिन् तद्बुद्धि मोह :— जो जैसा हो उसको वैसा न समझना ही मोह कहलाता है) अर्थात अज्ञान हुआ है,
भिन्धि,	उसे परमेश्वर का स्मरण करनें से काट ड़ालो।
रजस्तमसो भिन्धि,	रजोगुण और तमोगुण, जो तुम्हें इस संसार से बाँध रहे हैं, उस बन्धन की ग्रन्थियों को काट डालो। (तथा)
प्राकृतपाशजालं सावरणं परिहर	जो तुम इन बन्धनों के जाल और इस के आवरण में फंसे हो उसे फेंक दो।
सत्त्वं ग्रहाण,	शुद्ध सत्व को प्राप्त होने से जो निर्मल तत्त्व का ज्ञान होता है, उसे ग्रहण कर,
पुरुषोतमऽसि;	(क्योंकि) तुम स्वयं तो पुरुषोत्तम अर्थात शुद्ध आत्म-तत्त्व ही हो,
सोमसूर्यानलप्रवर !	चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि (प्रमेय, प्रमाता और प्रमाण; अपर, पर और परापर; द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत,) यह तेजोमय रूप तुम्हारे ही हैं।
परम धामन्	(अत:) तुम परम तेज रूप हो,
ब्रह्मविष्ण महेश्वरस्वरूप ! सृष्ठिस्थितिसंहारकारक !	तुम ही ब्रह्मा के रूप से सृष्टि करने वाले हो, तुम ही विष्णु के रूप से पालन करने वाले हो, और तुम ही महेश के

	रूप से इसे अपने स्वरूप में लय करने वाले हो।
भ्रूमध्यनिलय !	नासिका के ऊपर भुओं के मध्य में तुम्हारे स्वरूप का ध्यान टिकाने से ही अनुभव में आने वाले चित्स्वरूप ! (अर्थात् तुम भ्रूमध्य स्थान वाले हो।)
तेजोऽसि,	तुम (स्वयं ही प्रकट हुए) तेज हो,
धामासि,	तुम सब को प्रकाश में लाने वाले हो,
अमृतात्मन् !	तुम अमृत स्वरूप हो।
ॐ	तुम ओम्-रूप हो अर्थात् यह भूःभूवः स्वः ऋक् यजु साम; जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति रूप जगत् तेरी ही व्याख्या है।
तत्	तुम 'वह' गूढ़ हृदय गुफा में छिपे परब्रह्म हो,
सत्	तुम सब का आधार और तीनों कालों की बाधा से रहित सत्-स्वरूप हो ।
हंसः	तुम स्वय-प्रकाश व्यापक ब्रह्म हो,
शुचिषत्	तुम निर्मल स्वरूप अर्थात शुद्ध स्थान पर (हृदयगुहा में) रहने वाले हो;
वसुरन्तरिक्षसत्	तुम आकाश में रहने वाले वसु हो अर्थात,

	आकाश की तरह सर्व चराचर में व्याप्त हो।
होता वेदिषत्	तुम ही अग्नि में आहुति डालने वाले 'होता' हो और तुम ही यज्ञ की वेदी पर ठहरे हुए 'अग्नि' हो।
अतिथिर्दुरोणसत्	तुमही ग्रहस्थों में अतिथिरूप देवता हो,
नृषत्	मनुष्यों में रहने वाले हो,
वरसत्	देवताओं में वास करने वाले हो
ऋतसत्	सत्य लोक में रहने वाले हो अर्थात सत्यस्वरूप हो,
व्योमसत्	आकाश में ओत-प्रोत हो,
अब्जा	जल से जो रत्न, शंख, जीवजन्तु और वनस्पति उत्पन्न होते हैं वह सब तुम ही हो,
गोजा	पृथ्वी पर नदी, नाले, पर्वत, वन, खेत मैदान आदि तुम ही हो,
ऋतजा अद्रिजा ऋतं वृहत्	यज्ञ (सत्कर्मों) से और पर्वतों (उच्चविचारों) से उत्पन्न होने वाला तुम सब से महान् परम सत्य हो।
परब्रह्मस्वरूप !	हे (तत्त्वमसि महावाक्य से सद्गुरु द्वारा गम्य) परब्रह्मस्वरूप !
सर्वगत !	हे सब वस्तुओं में व्याप्त वस्तु !
सर्वशक्ते !	हे सर्वशक्तिमान प्रभु !

सर्वेश्वर !	हे सब के स्वामी !
सर्वेन्द्रियग्रन्थिभेदं कुरु कुरु	बस, तुम इन्द्रियों से आसक्ति (लगाव) जल्दी (अभी) छोड़ दो।
परमंपदं परामर्शय	उस परमपद को पाने का उत्तम मार्ग विचारो (परमेश्वर के चिन्तन-ध्यान में लग जा)।
परमार्गब्रह्मद्वारं सर	उस उत्तम मार्ग (मध्यधाम) से ब्रह्मद्वार की ओर चल अर्थात् अपने स्वरूप को पहचान,
कुमार्गं जहि,	अज्ञानरूप उल्टे मार्ग को त्याग,
षाट्कोशिकंशरीरं त्यज,	रोम, रक्त, मांस, हड्डी, वसा और वीर्य से बने हुए इस स्थूल शरीर को छोड दे।
शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि विमलोऽसि,	(क्योंकि) तुम (वास्तव में) शुद्ध-स्वरूप हो, ज्ञानरूप हो, निर्मल (मायामल रहित)
क्षमस्व	हो, इस योग्य होने के कारण इस का ज़रा विचार कर।
स्वपदमास्वादय	अपने स्वरूप का 'अहंब्रह्मास्मि' महावाक्य द्वारा अनुभव कर और
आस्वादय स्वाहा	अनुभव करके इस ज्ञान को तू अच्छी तरह स्वीकार कर ॥

—जानकीनाथ कौल
'कमल'

उपनिषत्पाठः

(अध्यात्मयोग)

श्वेतश्वतरोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

पूर्णब्रह्म परमात्मन्! आप हम दोनों (गुरु-शिष्य) की साथ-साथ रक्षा करें; हम दोनों का साथ-साथ पालन करें; हम दोनों साथ-साथ ही शक्ति प्राप्त करें; हम दोनों की पढ़ी हुई विद्या तेजोमयी हो; हम दोनों परस्पर द्वेष न करें।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥७॥ ६/६

उस ईश्वरों के भी परम महेश्वर; सम्पूर्ण देवताओं के भी परम देवता; पतियों के भी परम पति (तथा) समस्त

ब्रह्माण्ड के स्वामी (एवं) स्तुति करने योग्य उस प्रकाशरूप परमात्मा को (हम लोग) सब से पर जानते हैं ॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥८॥

उसके (शरीररूप) कार्य और (अन्त:करण तथा इन्द्रियरूप) करण नहीं हैं; उस से बडा और उसके समान भी (दूसरा) नहीं दीखता, तथा इस परमेश्वर का ज्ञान (ज्ञानशक्ति), बल (इच्छाशक्ति) और क्रिया (क्रियाशक्ति) रूप स्वाभाविक दिव्य शक्तियां नाना प्रकार की ही सुनी जाती है।

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ।९।

जगत् में कोई भी उस परमात्मा का स्वामी नहीं है; उसका (कोई) शासक भी नहीं है और उसका चिह्न विशेष भी नहीं है। वह सब का परम कारण (तथा) समस्त कारणों के अधिष्ठाताओं का भी आधिपति है। कोई भी न तो इसका जनक हैं और न स्वामी ही है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥१०॥

(वह) एक देव ही सब प्राणियों में छिपा हुआ, सर्वव्यापक (और) समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा है, (वही) सब के कर्मों का अधिष्ठाता, सम्पूर्ण भूतों का निवासस्थान, सब का साक्षी, चेतनस्वरूप और सब को चेतना प्रदान करने वाला, सर्वथा विशुद्ध (और) गुणातीत भी है।

एको वशी निष्क्रियाणां बहूना-
मेकं बीजं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥११॥

जो अकेला ही बहुत से, वास्तव में, अक्रिय जीवों का शासक है (और) एक प्रकृतिरूप बीज को अनेक रूपों में परिणत कर देता है; उस हृदयस्थित परमेश्वर को जो धीर पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं। उन्ही को सदा रहने वाला परमानन्द प्राप्त होता है, दूसरों को नहीं।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।

तत् कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१२॥

जो एक नित्य चेतन (परमात्मा) वहुत से नित्य चेतन आत्माओं के कर्मफलभोग का विधान करता है, उस ज्ञानयोग से और कर्मयोग से प्राप्त करने योग्य कारणरूप परमदेव परमात्मा को जानकर (मनुष्य) समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१३॥

वहां न तो सूर्य प्रकाश फैला सकता है, न चन्द्रमा और तारागण का समुदाय ही; और न ये बिजलियां ही वहां प्रकाशित हो सकती है; (फिर) यह लौकिक अग्नि तो कैसे प्रकाशित हो सकता है। क्योंकि उसके प्रकाशित होने पर ही (उसी के प्रकाश से) बतलाये हुए सूर्य आदि सब उसके पीछे प्रकाशित होते हैं। उसके प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है।

एको हँसो भुवनस्यास्य मध्ये
स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः ।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्थः विद्यतेऽयनाय ॥१४॥

इस ब्रह्माण्ड के बीचमें (जो) एक प्रकाशस्वरूप परमात्मा (परिपूर्ण) है, वही जल में स्थित अग्नि है। उसे जानकर ही (मनुष्य) मृत्युरूप संसार-समुद्र से सर्वथा पार हो जाता है। दिव्य परमधामकी प्राप्ति के लिए दूसरा मार्ग नहीं है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तँ ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥१५॥

जो परमेश्वर निश्चय ही सब से पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्मा को समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करता है, उस परमात्मज्ञान विषयक बद्धिको प्रकट करने वाले प्रसिद्ध देव परमेश्वर को मैं मोक्ष की इच्छा वाला साधक आश्रयरूप में ग्रहण करता हूं।

(कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतरोपनिषदतः)

ॐ सह नाववत्विति शम्

आरती

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्तजनों के संकट, क्षण में दूर करे।। ॐ जय०।।

जो ध्यावे फल पावे, दु:ख बिनसे मन का।
सुख-सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का।। ॐ जय०।।

मात-पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी।। ॐ जय०।।

तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी।। ॐ जय०।।

तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्ता।
मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भर्ता।। ॐ जय०।।

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूँ दयालु, तुम को मैं कुमति।। ॐ जय०।।

दीनबन्धु दु:खहर्ता, तुम ठाकुर मेरे।
अपने हाथ उठावो, द्वार पडा तेरे।। ॐ जय०।।

विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा-भक्ति बढाओ, सन्तन की सेवा।। ॐ जय०।।

(श्री श्रद्धाराम फिल्लोरी 'श्रद्धा')

शिव-शंकर

SHIVA-SHANKARA

मन स्थिर कर मन्त्र पर—
शिव-शंकर शम्भो !

Aim at the stability of mind, and
Chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

मन शुद्ध बनि साक्षात् ननि—
हनि हनि गटि मंज़ गाश,
सुविचार ब्ययि श्रद्धायि पर—शिव०

It's purification of mind, that
Ushers unto you Light in darkness.
So, with reflection and un-suspicion.
Chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

प्रभातस अछ़ मन्दिरस
गंग-ज़ल तन नाविथ
ध्यान-धारणायि मनि मंज़ सुर—शिव०

After purifying the body, rise above,
Enter early the shrine—super-conscious state,
In meditation and self-absorption—
Chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

शिव-नाथस गोड दि अशि-ज़ल
शेरि लागुस भाव पोष
मन प्राण वार तुता कर—शिव०

Let thy tears be the ablution to Shiva.
Thy sincerity the offering of flowers,
Negation of mind with vital force—thy worship,
And, chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara

इन्द्रिय नैवेद्य सोम्बराव,
मन-त्रामरि मंज़ थाव,
देह-दीप ज़ालिथ वार पर—शिव॰

Collect thy offerings of distracting senses,
Arrange them in the plate of mind,
With body-lamp lit reflecting beyond—
Chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

वासनायि धूप थव दज़वुन
विज्ञान-दीप ब्रज़वुन
व्यज़-पूर्वक व्यज़ना कर—शिव॰

Keep the cencer on with incense-thoughts dissolving.
Lit the lamp in subjective observation,
Fanning away distractions carefully,
Sing thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

सहस्त्रदल कमल फोलराव
शिव-अनुग्रह यिथ प्राव,
शिव नित सुर चॢलि ज़्य त मर—शिव॰

Now blossoms the thousand-petalled 'Kamal',
The super-conscious state—the grace divine,
Be established, the wheel stands dispelled thus
By chanting the Lord's name—Shiva-Shankara.

'JANKINATH KAUL'

OUR PUBLICATIONS

[illegible]